अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

मार्च २०२१

जन्मदिन

अग्निशिखा मार्च २०२१ वर्ष ५१, अंक ८, पूर्णांक ६०७

विषय-सूची

जन्मदिन

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

सम्पादकीय		३
प्रार्थना	श्रीमाँ	४
जन्मदिन का अर्थ		६
प्रत्येक वस्तु में एक तरह की लय होती है		८
आर. को उसके जन्मदिवस पर		१४
साधकों को उनके जन्मदिवस पर दिये गये श्रीअरविन्द के सन्देश		१६
नवजन्म		२६
संस्मरण तथा जीवन की झाँकियाँ	चम्पकलालजी	२९
दो कमल	चम्पकलालजी	३१
'पुरोधा' : दैनन्दिनी		३४
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : गुह्य ज्ञान	नवजातजी	३७
श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द के वचन		४०
आध्यात्मिकता, जीवन के व्यवहार में	श्रीअरविन्द	४३
श्रीमाँ के साथ रवीन्द्रजी का पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	४९
कैसे पहुँच पाऊँगा? (कविता)	स्व. श्री विश्वनाथ	५३
अनमोल भेंट	वन्दना	५४
सरस्वती-वन्दना	आवरण	३

कोई भी आनन्द इससे बढ़ कर नहीं हो सकता कि तुम अपने-आपको पूरी तरह उन भगवान् को दे सको जो सबसे अधिक महान् हैं—ईश्वर, परम पुरुष, दिव्य अस्तित्व, निरपेक्ष सत्य—इसका कोई महत्त्व नहीं है कि उन्हें किस नाम से पुकारा जाये और किस पक्ष से ज़्यादा आसानी से हम उन तक पहुँच सकें। अपने-आपको पूर्ण आत्म-दान में भूल जाना उपलब्धि का सबसे निश्चित मार्ग है। —श्रीमाँ

सम्पादकीय टिप्पणी :

हमारे जीवन में श्रीमाँ और श्रीअरविन्द की परम 'कृपा' अपरम्पार है। उन्होंने जीवन के हर एक पहलू को सम्भाला है, सराहा है; उनके लिए सारा जीवन ही योग है, इसलिए जीवन का हर पल, इसका हर पक्ष बहुत ही महत्त्व रखता है।

आश्रम के जीवन में 'जन्मदिवस' का भी विशेष महत्त्व है क्योंकि माँ-श्रीअरविन्द ने इसे एक विशेष अर्थ दिया है, वह यह है कि अपने हर जन्मदिन पर सचमुच हमारा एक महानतर जीवन में जन्म होता है, यह हमारी अन्तरात्मा का विकास के अगले सोपान पर चढ़ने का अवसर है। हालाँकि हमारी वर्षगाँठ हमारे परिवार तथा इष्ट-मित्रों के लिए प्रसन्नता का, हँसी-ख़ुशी का स्रोत है, लेकिन वास्तव में यही दिन है जब हम अपने 'भागवत माता-पिता' के बहुत क़रीब, सचमुच आमने-सामने होते हैं और वे हमें उस दिन यह अवसर प्रदान करते हैं कि हम अपने जीवन के गभीरतर उद्देश्य के प्रति सचेतन हो सकें।

हमारा यह अंक जन्मदिवस के प्रतीक को समर्पित है जो हमारे जीवन में हर साल इस अद्‌भुत अवसर के रूप में आता है कि हम अपनी अभीप्सा को पुनः प्रज्वलित कर, अपने सभी दोषों को उसमें स्वाहा करने का प्रयास करके, भविष्य की ओर एक छलाँग लगा सकें।

हम वैश्व जीवन के एक विशेष सौभाग्यशाली मुहूर्त में हैं, जब धरती की हर चीज़ को नयी सृष्टि के लिए, बल्कि यूँ कहें, शाश्वत सृजन के अन्दर एक नयी अभिव्यक्ति के लिए तैयार किया जा रहा है।

—श्रीमाँ

प्रार्थना

२७ फ़रवरी १९१४

हे प्रभो, मैं उस अनन्त सुख का अनुभव करती हूँ जो उन लोगों के भाग में आता है जिनका जीवन पूरी तरह तुझे समर्पित है। और यह बाहरी परिस्थितियों पर नहीं बल्कि अपनी निजी सत्ता की अवस्था पर और उसके प्रकाश की कम या अधिक मात्रा पर निर्भर करता है। तेरे विधान के प्रति पूर्ण समर्पण परिस्थितियों की समग्रता में परिवर्तन लाये बिना नहीं रह सकता और फिर भी ये ही वे चीज़ें नहीं हैं जो इस पूर्ण समर्पण को सम्भव बनाती और प्रकट करती हैं। मेरा मतलब यह है कि तेरा विधान हमेशा अमुक परिस्थितियों में ही नहीं प्रकट होता जो सदा सभी के लिए एक होती हों; क्योंकि यह अभिव्यक्ति हर एक के लिए उसके स्वभाव के अनुसार, यानी भौतिक जीवन में उस समय उसे जो लक्ष्य सौंपा गया है उसके अनुसार भिन्न होती है।

लेकिन जो अपरिवर्तनशील और विश्वव्यापक है वह है सुखमय शान्ति, उन सबकी ज्योतिर्मयी और निर्विकार निरभ्र शान्ति जो एकमात्र तुझे ही समर्पित हैं, जिनमें कोई अन्धकार, अज्ञान, अहंकारमयी आसक्ति या दुर्भावना शेष नहीं रही।

वर दे कि सभी इस दिव्य शान्ति की ओर जाग्रत् हों।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ५३

मधुर माँ,

एक स्मारक अवसर होने के अलावा हमारे जन्मदिन का सचमुच क्या अर्थ होता है? व्यक्ति इस अवसर का लाभ कैसे उठा सकता है?

वैश्व शक्तियों के लय के कारण यह माना जाता है कि हर साल व्यक्ति के अन्दर अपने जन्मदिन पर विशेष ग्रहणशीलता होती है। इस कारण वह इस ग्रहणशीलता का इस भाँति लाभ उठा सकता है कि अपने सम्पूर्ण विकास के लिए वह इस दिन अच्छे संकल्प ले, नयी प्रगति की ओर आगे क़दम उठा ले।

२५ नवम्बर १९६४ **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १६, पृ. ३४९

जन्मदिन का अर्थ

कल तुम्हारा जन्मदिन है न?

जी माताजी।

तुम कितने वर्ष के होगे?

माँ, छब्बीस का।

मैं कल तुमसे मिलूँगी और तुम्हें कोई विशेष चीज़ दूँगी। तुम देख लोगे। मैं किसी भौतिक चीज़ की बात नहीं कह रही—कि मैं तुम्हें एक कार्ड और अन्य चीज़ें दूँगी... नहीं कुछ और... तुम कल देख लोगे। अभी घर जाओ और शान्ति के साथ तैयारी करो ताकि तुम उसे लेने-योग्य बन सको।

जी, अच्छा माताजी।

मेरे बच्चे, तुम जानते हो, "शुभ जन्मदिन" का क्या अर्थ है, यानी, हम यहाँ जिस जन्मदिन के लिए शुभ-कामना कर रहे हैं उसका क्या मतलब है?...

वैसे तो मैं समझता हूँ, परन्तु वह विशेष अर्थ नहीं जानता जो आप कहना चाहती हैं।

हाँ, सचमुच यह मनुष्य के जीवन में एक विशेष दिन होता है। यह वर्ष के उन दिनों में से एक है जब परम पुरुष हमारे अन्दर उतरते हैं—जब हम शाश्वत के साथ आमने-सामने होते हैं—यह उन दिनों में से एक है जब हमारी अन्तरात्मा शाश्वत के साथ सम्पर्क में आती है और अगर हम ज़रा भी सचेतन रहें तो हम अपने अन्दर उनकी 'उपस्थिति' का अनुभव कर सकते हैं। अगर हम ज़रा-सा प्रयास करें तो हम बिजली की कौंध की तरह एक क्षण में कई जीवनों का काम पूरा कर सकते हैं। इसीलिए मैं

जन्मदिन को इतना अधिक महत्त्व देती हूँ—क्योंकि, इस एक दिन में तुम जो प्रगति कर सकते हो वह सचमुच अतुलनीय है। और मैं भी तुम्हारी चेतना को ज़रा ऊपर की ओर खोलने के लिए कार्य करती हूँ ताकि तुम शाश्वत के सामने आ सको। मेरे बालक, यह बहुत, बहुत विशेष दिन है क्योंकि यह निर्णय का दिन है, ऐसा दिन है जब तुम 'परम चेतना' के साथ एक हो सकते हो। इस दिन भगवान् हमें उच्चतम सम्भव क्षेत्र तक उठाते हैं ताकि हमारी आत्मा, जो उस शाश्वत ज्वाला का अंश है, अपने 'उत्स' के साथ मिल कर तदात्म हो सके।

वस्तुतः, यह दिन जीवन का एक महान् अवसर है। व्यक्ति इस दिन इतना खुला हुआ और ग्रहणशील होता है कि उसे जो कुछ दिया जाये उस सबको आत्मसात् कर सकता है। मैं इस दिन बहुत-सी चीज़ें कर सकती हूँ, इसीलिए यह इतना महत्त्वपूर्ण है।

यह उन दिनों में से एक है जब स्वयं प्रभु हमारे लिए द्वारों को पूरी तरह खोल देते हैं, यह ऐसा है मानों वे हमें निमन्त्रण देते हों कि हम अभीप्सा की ज्वाला को फिर से अधिक शक्तिशाली रूप में प्रज्वलित करें। यह उन दिनों में से एक है जो वे स्वयं हमें प्रदान करते हैं। हम भी अपने व्यक्तिगत प्रयास द्वारा इसे सम्पन्न कर सकते हैं, परन्तु इसमें अधिक समय लगेगा और यह इतना आसान नहीं, कठिन और लम्बा होगा।

और यह, यह जीवन में एक वास्तविक सुअवसर, 'कृपा' का दिवस है।

१८ जनवरी १९६०

किसी दूसरे दिन श्रीमाँ ने यह कहा—

यह एक गूढ़ आध्यात्मिक घटना है जो अबाध रूप से, हमारे जाने बिना, वर्ष के इस विशेष दिन घटती है। अन्तरात्मा अपने शरीर को पीछे छोड़ देती है और ऊपर, और ऊपर की ओर यात्रा करती है, यहाँ तक कि वह अपने मूल में जा मिले ताकि अपने-आपको फिर से भर सके और अपने अन्दर परम प्रभु से उनकी शक्ति, ज्योति और उनके आनन्द को आत्मसात् कर सके। फिर पूरे एक वर्ष तक काम चलाने के लिए नीचे उतर आती है। वर्ष पर वर्ष... यही क्रम चलता रहता है।

'मधुर माँ', पुस्तक से *माताजी के साथ मोना की बातचीत*

प्रत्येक वस्तु में एक तरह की लय होती है

(माताजी श्रीअरविन्द की पुस्तक 'योग-समन्वय' में से "चार सहायताएँ" पढ़ती हैं। फिर एक साधक ने एक प्रश्न पूछा :)

मधुर माँ, यहाँ लिखा है : "अन्त में आता है 'काल'—समय, क्योंकि सभी चीज़ों में उनका क्रिया-चक्र और दिव्य गति की अवधि होती है...।" यह दिव्य गति की अवधि क्या है?

यह हर चीज़ के लिए अलग-अलग है।

हर क्रिया के लिए, हर सिद्धि के लिए, हर गति के लिए समय की एक निश्चित अवधि होती है, वह अलग-अलग होती है। समय की अनगिनत अवधियाँ हैं जो उलझी हुई हैं; लेकिन हर चीज़ एक प्रकार की लय से नियन्त्रित रहती है जो उस चीज़ की अपनी लय होती है।

देखो, अपने बाहरी जीवन की सुविधा के लिए मनुष्यों ने समय को लगभग मनमाने रूप से वर्षों, महीनों, सप्ताहों, दिनों, घण्टों, मिनटों, सेकेण्डों, आदि में बाँट दिया है; यह एक ऐसी लय है जो लगभग मनमानी है, क्योंकि इसे मनुष्य ने बनाया है, लेकिन इसके अन्दर अमुक वास्तविकता है क्योंकि वह वैश्व गतिविधि के साथ... जहाँ तक हो सके, मेल खाती है। और, प्रसंगवश, उदाहरण के लिए, हम जन्मदिन इसीलिए मनाते हैं : क्योंकि हर एक के जीवन में एक लय होती है जो उसकी परिस्थितियों के साथ और जन्म के नियमित चक्रों के साथ मेल खाती है।

और सभी गतिविधियों का अवलोकन करने पर पता चलता है कि उनकी एक ख़ास लय होती है, उदाहरण के लिए, केवल समझने की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं की दृष्टि से, आन्तरिक चेतना की गतिविधियों के, प्रगति में उतार-चढ़ाव के; आगे बढ़ने और पीछे हटने के, कठिनाइयों और सहायताओं के काफ़ी नियमित अवधियों के चक्र होते हैं। लेकिन हर व्यक्ति ध्यान दे तो वह अनुभव करेगा कि उसकी लय बिलकुल उसकी अपनी है; उसके पड़ोसी की लय वही नहीं है। लेकिन जिस तरह ऋतुओं की एक ख़ास लय होती है, जो सब मिला कर काफ़ी

नियमित होती है, उसी तरह व्यक्तिगत जीवन की अपनी ऋतुएँ होती हैं। और जब व्यक्ति ध्यान से अपना अध्ययन करता है, तो उसे पता चलता है कि नियमित अन्तराल पर एक-सी परिस्थितियाँ भी दोहरायी जाती हैं। यहाँ तक कि बहुत संवेदनशील व्यक्ति यह भी जान पाते हैं कि सप्ताह के अमुक दिन या दिन के अमुक घण्टों में वे ज़्यादा काम कर सकते हैं। कुछ लोगों को विशेष दिनों पर और विशेष घण्टों में अधिक कठिनाई होती है; इसके विपरीत, कुछ लोगों को विशेष क्षणों में ज़्यादा अच्छी प्रेरणा प्राप्त होती है—लेकिन हर एक को अवलोकन द्वारा अपने अन्दर इसका पता लगाना होता है। स्वाभाविक है कि यह निरपेक्ष होने से बहुत दूर है, यह कोई कठोर नियम नहीं है, और अगर यह कष्टप्रद हो तो सिर्फ़ दृढ़ इच्छा के ज़रा-से प्रयास से हटाया जा सकता है। लेकिन अगर वह सहायक हो तो उसका उपयोग किया जा सकता है।

और यह सब, कि हर चीज़ की अपनी-अपनी लय है, है न, यह बहुत ज़्यादा पेचीदा लयों का ताना-बाना बनाती है जिसका परिणाम वह है जिसे हम देखते हैं : जिसमें कोई लय नहीं मालूम होती—क्योंकि वह बहुत ज़्यादा पेचीदा, बहुत अधिक जटिल है।

मधुर माँ, हम इसका उपयोग कैसे कर सकते हैं?

हाँ, अगर... मान लो, तुम जानते हो... हम योग के बारे में बातचीत कर रहे हैं... अगर तुम अपने अन्दर किन्हीं अवस्थाओं की एक तरह की पुनरावृत्ति देखो, उदाहरण के लिए, किसी विशेष मुहूर्त पर, दिन के किसी विशेष समय में, अमुक परिस्थितियों में तुम ज़्यादा अच्छी तरह एकाग्र हो सकते हो या ध्यान कर सकते हो, तो, तुम उसी समय ध्यान या एकाग्रता करके उसका उपयोग कर सकते हो।

स्वाभाविक है कि तुम्हें उसका दास नहीं बन जाना चाहिये; तुम उसका उपयोग कर सकते हो लेकिन उसे एक आवश्यकता न बन जाना चाहिये ताकि उस समय के बीत जाने पर तुम ध्यान कर ही न सको। लेकिन अगर वह अच्छी सहायता है तो तुम सहायता का उपयोग कर सकते हो; यह सब अवलोकन की बात है।

अगर तुम अपना अध्ययन करो तो तुम्हें पता लग सकता है कि वर्ष

में कुछ काल ऐसे आते हैं जो केवल व्यक्तिगत अवस्थाओं के कारण ही नहीं, अधिक सामान्य अवस्थाओं के, सामान्य प्रकृति की अवस्था के कारण आते हैं। ऐसे काल आते हैं जब तुम्हें साधना में ज़्यादा कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है; इसके विपरीत, ऐसे काल आते हैं जब तुम अपने अन्दर ज्ञान और चेतना की वृद्धि के लिए अधिक उत्साह पाते हो। इससे तुम्हें इस अर्थ में सहायता मिलती है कि, अगर किसी समय तुम अपने-आपको विशेष कठिनाइयों के बीच पाओ या ऐसा लगे कि गति रुक गयी है, तो रोने-धोने की जगह तुम अपने-आपसे कहो: "क्यों, यह तो वही काल है; क्योंकि हम वर्ष के इस समय-विशेष में हैं।" और तुम धैर्य के साथ समय के बीत जाने की प्रतीक्षा करो; या तुम जितना कर सकते हो करो, लेकिन हतोत्साह होकर यह न कहो: "हाय, देखो तो, मैं आगे नहीं बढ़ रहा, मैं कोई प्रगति नहीं कर रहा।" इससे तुम्हें समझदार होने में सहायता मिलती है।

और स्वभावतः तुम एक और क़दम उठा सकते हो और इस तरह सावधानी बरत सकते हो कि... इन बाहरी प्रभावों से मुक्त होने के लिए आन्तरिक सावधानी। लेकिन यह बहुत बाद में आती है, जब तुम अपनी साधना के सचेतन स्वामी बनने लगते हो। यह बाद में आती है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ३६८-७०

मेरी समझ में नहीं आता कि साधारणतः लोग अपने जन्मदिन को इतना उत्तेजनापूर्ण क्यों बना देते हैं? यह सच है कि आपने एक बार लिखा था कि और दिनों की अपेक्षा जन्मदिन पर व्यक्ति की भौतिक सत्ता अधिक उद्घाटित और श्रीमाँ के प्रति अधिक ग्रहणशील होती है।

यह भौतिक सत्ता या शरीर के जन्मदिन का प्रश्न नहीं है—इस दिवस को व्यक्ति को इस रूप में लेना चाहिये कि उसके अन्दर एक विकसनशील नवजन्म हो रहा है और इसे वह अपने जीवन के एक नूतन वर्ष के प्रति उद्घाटित होने का सुअवसर बना सकता है। श्रीमाँ ने जन्मदिन को यही अर्थ और महत्त्व प्रदान किया है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ५२४-२५ ७ अक्तूबर १९३६

मधुर माँ, मैं जन्मदिन का सच्चा अर्थ जानना चाहूँगी, क्योंकि यहाँ यह महत्त्वपूर्ण दिन होता है।

आन्तरिक स्वभाव के अनुसार, साल-दर-साल, अपने जन्मदिन पर व्यक्ति अधिक ग्रहणशील होता है, इसलिए यह सुअवसरीय दिवस ऐसा मुहूर्त होता है जो उसे हर साल नयी प्रगति करने में उसकी सहायता करता है।

आशीर्वाद।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ४४७

जन्मदिन की यथार्थता

तुम पहले से ही यह निश्चय क्यों कर लो भला कि तुम्हारा जन्मदिन ख़राब हो गया? तुम्हें बस इन अवाञ्छनीय विचारों और भावनाओं को अपने अन्दर से निकाल फेंकना होगा जो बाहरी सत्ता के अभी तक अपूर्ण रूप से पवित्र भाग से आगे बढ़ते हैं जिन्हें तुम्हें हमेशा जब-जब तुम माँ के पास आओ, अपनाना चाहिये। तुम्हारे अन्दर ऐसा कोई भी विचार न हो कि औरों के पास क्या है और क्या नहीं है—तुम्हारा सम्बन्ध बस माँ और तुम्हारे बीच है। तुम्हारे लिए अपने और भगवान् के सिवाय और किसी का अस्तित्व नहीं होना चाहिये—तुम ग्रहणकर्ता हो, उनकी शक्ति तुम्हारे अन्दर प्रवाहित हो रही है।

इसे ज़्यादा अच्छी तरह बनाये रखने के लिए तुम्हें अपना समय बातचीत में नहीं बिताना चाहिये—ख़ासकर अगर तुम्हारे अन्दर अवसाद का पुट बाक़ी रह गया हो तो ऐसी चीज़ों पर बातचीत करना अपना समय बरबाद करना होगा जो सच्ची चेतना को प्रतिष्ठित करने में मदद नहीं कर सकतीं। एकाग्र होओ, अपने-आपको उद्घाटित कर दो और श्रीमाँ को तुम्हें उस चैत्य अवस्था में वापस लाने दो जिसमें वे तुम्हारे अन्दर ध्यान और नीरवता को प्रतिष्ठित कर देंगी।

१६ मई १९३३

माँ, आपने मुझसे वह लिख कर देने को कहा जो मैं अपने जन्मदिन पर चाहता हूँ। सचमुच, मुझे पता नहीं। आप ही जानती हैं कि मेरे

लिए क्या उत्तम है। मैं तो बस यही प्रार्थना करूँगा कि मैं अपनी सत्ता के प्रत्येक भाग में पूरी तरह से आपके और श्रीअरविन्द के प्रति समर्पित हो सकूँ, आपके प्रति पूरी तरह उद्‌घाटित रह सकूँ, और यह कि मेरी श्रद्धा पूर्ण बन जाये।

यह ठीक है। जो तुम चाहते हो, माँ तुम्हें देंगी।

२२ जनवरी १९३४

चूँकि मैंने अपने जन्मदिन पर श्रीमाँ के दर्शन किये, मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है मानों मैं एक नया जीवन जी रहा हूँ जिसमें माँ के साथ एक नयी घनिष्ठता हो गयी है। क्या यह सच है?

अगर तुम ऐसा अनुभव कर रहे हो तो ठीक है—लेकिन सम्भव है कि यह नवजन्म के बीज के सिवाय और कुछ न हो, क्योंकि अधिक महान् आन्तरिक उद्‌घाटन के द्वारा ही नया जीवन जिया जा सकता है।

१० फ़रवरी १९३४

ऐसा लगता है कि कल अपने जन्मदिन पर जब माँ ने मुझे साक्षात्कार के लिए बुलाया था—मैंने अपने बारे में बहुत कुछ जाना और सीखा। वह सैद्धान्तिक ज्ञान नहीं था, बल्कि एक तरह की उपलब्धि या अनुभूत ज्ञान था और शायद वह ऐसी 'शक्ति' थी जिसे उन्होंने मेरे अन्दर उँडेल दिया। अब मैं न इतना दुर्बल या असहाय अनुभव कर रहा हूँ, न ही अपने दोषों और अपूर्णताओं का ग़ुलाम। बल्कि मेरे अन्दर ऐसा विश्वास जमता जा रहा है कि मैं अपनी समस्त निम्न प्रकृति से पिण्ड छुड़ाने में समर्थ हो जाऊँगा।

इसे ही हम विकसनशील चेतना कहते हैं—ऐसा बोध जिसका आधार चैत्य है, यद्यपि यह मन, प्राण या शरीर में कहीं भी अनुभव किया जा सकता है। निस्सन्देह, वह शक्ति जिसे इसने जगाया, श्रीमाँ से ही आयी थी।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ५२५-२६ **श्रीअरविन्द**

'सावित्री' से : एक मृत घूमते ब्रह्माण्ड में जीवित

हम यहाँ ऐसे ही एक आकस्मिक भूमण्डल पर नहीं घूम रहे हैं
जैसे अपनी शक्ति से परे का एक कार्य सौंप हमें छोड़ दिया गया हो;
तथापि इस जटिल अराजकता में जिसे दैवी भाग्य कह पुकारते हैं
और मृत्यु तथा पतन की इस कटुता के मध्य
हम अपने जीवनों पर एक वरद हस्त की सुरक्षा का अनुभव पाते हैं।
यह असंख्य देहों औ' जन्मों में हमारे साथ होता है;
अपनी दृढ़ पकड़ में यह हमारे लिए सुरक्षित रखता है
उस अद्वितीय अनिवार्य परम परिणाम-फल को
जिसे कोई संकल्प चुरा नहीं सकता औ' कोई सर्वनाश बदल नहीं सकता,
सचेत चैतन्य अमरतत्त्व का यही राजमुकुट है,
हमारी संघर्षरत अन्तरात्माओं को देवता द्वारा दिया गया यही वचन था
जब प्रथम मनुज-हृदय ने मृत्यु का सामना कर जीवन में दुःख झेला था।
जिस परमैकम् ने इस संसार को आकार दिया वही इसका स्वामी है :
हमारे दोष उसके मार्ग पर चलते हुए उसी के क़दम हैं;
हमारे जीवनों के विषम उतार-चढ़ावों द्वारा वही कार्य करता है,
संग्राम और कठोर श्रम के बोझिल श्वास में वही कार्य करता है,
हमारे पापों, दुःखों और अश्रुओं के माध्यम से भी वह कार्य करता है,
प्रभु का ज्ञान हमारी निश्चेतना को अधिकृत कर मिटा देता है;
हमारा रूप-रंग चाहे कैसा भी क्यों न हो,
हमारे वर्तमान दुर्भाग्य और दोष कितने भी क्यों न हों,
जब हमें कुछ भी सहारा न दीखे और नाव मँझधार में हो,
इस सबके मध्य हमें एक शक्तिशाली पथ-प्रदर्शक लिये चलता है।
जब हम इस महान् खण्ड-खण्ड बँटे संसार की सेवा से निवृत्त हो जाते हैं
तब प्रभु के आनन्द और एकत्व पर हमारा सहज अधिकार होता है।
परम अज्ञेय प्रभु के पंचांग में एक तिथि निश्चित है,
दिव्य-जन्म की एक पावन-जयन्ती निश्चित है :
तभी हमारा आत्म-पुरुष अपनी चतुरंगी चाल का औचित्य सिद्ध कर पायेगा,
अभी तक जो नहीं है अथवा सुदूर है तब सब समीप आ जायेगा।
अन्ततः ये शान्त और सुदूरवासिनी दिव्य समर्थताएँ कार्य-सञ्चालन करेंगी।

आर. को
उसके जन्मदिवस पर

तेरे भद्र वर्षों की पुनरावृत्ति
एक बार पुनः तेरे जन्म की सुबह को ले आयी है।
यौवन के शीर्ष पर जीवन तेरा प्रकट होता है,—
मानों एक तरंग उठती है।

सैकड़ों के बीच सागर की सतह पर
जो लहर भीड़-भरे सागर पर
नियमित लय के साथ जा रही है तट की ओर,
हमारा जीवन ऐसा ही हो।

शक्ति जो करती सञ्चालित, वह सागर की ही है
अजेय, शाश्वत, मुक्त,
और उसी आवेग से है उसकी धारा को बढ़ाती
यह है अनिवार्य रूप।

हम सब भी, शाश्वत शक्ति से ही होते निर्देशित
उस लक्ष्य की ओर जिसका किया है उन्होंने संकल्प।
हमारी पतवार को करते वे नियन्त्रित, जलयात्रा है विस्तृत,
उनका सुदृढ़ श्वास करता उसे परिपूर्ण।

उल्लसित यौवन के लालित्य और शक्ति में
करो सागर की यात्रा सुदूर,
करके विश्वास चालक में, मालिक की कृपा में
जो होता प्रतिध्वनित हमारे चहुँ ओर।

रहो आनन्दित, डरो नहीं लहरों के ज्वार से,
तूफ़ान का गर्जन हो या वायु का वेग सही;

हमारा कप्तान पतवार को थामे रखता है हमेशा ध्यान से,
वह सोता नहीं।

यदि विशाल सागर के गर्त में
तुम्हें दीखता नहीं आसमान फुहार के लिए,
कभी डरना नहीं, क्योंकि हमारा सूरज साथ है तेरे
दिन में और रात में।

जो विजयी बाढ़ में भी जाते हैं डूब,
कहाँ जाते हैं वे? 'उनके' वक्ष में करते वे आराम।
कुछ को देते वे विजय, हर्ष औ' कल्याण
कुछ को देते विश्राम।

लेकिन तुम, देखो उन प्रकाशमय दिवसों को, जो
आघात करती वर्षा और तूफ़ान से परे खड़े हैं प्रतीक्षारत।
मैंने किया है अन्तर्दर्शन तेरे ख़ुशहाल भाग्य का
जो करता है तेरे रूप को दीप्तिमान्।

उनकी कृपा में कर विश्वास, उनके संकल्प की कर आशा;
करने दे उन्हें मार्गदर्शन, लक्ष्य यद्यपि हो प्रच्छन्न,
देख उन्हें उस सब में जो होता है घटित, जो करता परिपूर्ण,
जिसके लिए हुआ है तेरा जन्म।

CWSA खण्ड २, पृ. २८०-८१ **श्रीअरविन्द**

हर एक वस्तु में एक लय-ताल होती है जिसे भौतिक कान नहीं सुन पाते, और उसी लय-ताल से वह वस्तु अस्तित्व में रहती है।

श्रीअरविन्द

साधकों को उनके जन्मदिवस पर दिये गये श्रीअरविन्द के सन्देश

ईश्वर करे कि नवजन्म तुम्हारे हृदय में अभिव्यक्त हो और अचञ्चलता तथा हर्ष में प्रसारित हो जाये, वह तुम्हारी सत्ता, मन और दृष्टि, संकल्प, भावना, जीवन तथा शरीर के सभी भागों को अपना ले। ईश्वर करे कि तुम्हारे जीवन की हर तिथि उसी के विकास और अधिकाधिक पूर्णता की तिथि बनती जाये जब तक कि तुम्हारे अन्दर का सब कुछ माँ का बालक न बन जाये। उनके 'प्रकाश', 'शक्ति' तथा 'उपस्थिति' से अपने-आपको घेर लो, वह तुम्हारी रक्षा करे, तुम्हें आँख की पुतली बनाये रखे और तुम्हें अपने हृदय में दुबकाये रखे जब तक कि तुम्हारा आन्तरिक और बाह्य अस्तित्व एक ही न बन जाये, जब तक कि वह शान्ति, बल तथा आनन्द की अभिव्यक्ति न बन जाये।

*

ऐसे जियो मानों तुम 'परम प्रभु' तथा 'भगवती माँ' की आँखों के ठीक नीचे हो। ऐसा कुछ न करो, ऐसा कुछ भी न सोचो या अनुभव करो जो 'भागवत उपस्थिति' के अयोग्य हो।

*

चेतना की सतह के नीचे अपने अन्दर गहरे उतरो, क्योंकि वहाँ तुम अन्तरात्मा की गभीर अचञ्चलता, प्रकाशमान् निश्चल-नीरवता, मुक्ति तथा आध्यात्मिक विस्तार पाओगे, वहीं तुम्हें प्राप्त होगा 'भगवान्' का प्रत्यक्ष स्पर्श और उनकी उपस्थिति।

*

मेरे आशीर्वाद

अपने हृदय से अहंकार की छाप को मिटा दो और उसका स्थान श्रीमाँ के प्रेम को लेने दो। अपने मन से समस्त व्यक्तिगत विचारों और निर्णयों को झाड़ दो, तब तुम्हारे अन्दर माँ को समझने का विवेक जागेगा। ऐसा हो कि क्रिया में तुम्हारे अन्दर आत्म-इच्छा या अहंकार न जागे, निजी अधिकार या व्यक्तिगत पसन्द से तुम आसक्त न रहो, तब माँ की क्रिया तुम्हारे अन्दर स्पष्ट रूप से कार्य करेगी और तुम्हारे अन्दर वह अक्षय ऊर्जा आ जायेगी जिसकी तुमने माँग की है, और तुम्हारी सेवा पूर्ण बन जायेगी।

हृदय के सम्मुख एक परदा, मन पर पड़ा एक ढक्कन हमें भगवान् से अलग करता है। 'प्रेम' और 'भक्ति' उस परदे को चीर देते हैं, मन की अचञ्चलता से ढक्कन क्षीण होकर, ग़ायब हो जाता है।

*

वर दे कि आन्तरिक 'सूर्य' मन को शान्त और प्रकाशित कर दे और हृदय को पूरी तरह से जाग्रत् कर, उसका पथ-प्रदर्शन करे।

*

मन की अचञ्चलता में, अपने हृदय के अन्दर भगवान् की उपस्थिति के प्रति खुलो; स्थिर मन और हृदय में भगवान् अचञ्चल जल में सूरज की भाँति दीखते हैं।

*

उच्चतर चेतना में उठो, उसके प्रकाश को नियन्त्रण करने और अपनी प्रकृति को रूपान्तरित करने दो।

*

हृदय के आत्मदान के द्वारा निश्चेतना में भी परम उपस्थिति और प्रभाव मौजूद रहेंगे और तुम्हारी सत्ता के सम्पूर्ण क्षेत्र के साथ-साथ तुम्हारी प्रकृति को भी सच्चे प्रकाश और चेतना के लिए तैयार करेंगे।

*

हमेशा अपनी आन्तरिक अभीप्सा पर बल दो; ऐसा हो कि वह तुम्हारे हृदय में गहराई और स्थिरता पा ले; हृदय के प्रेम और अभीप्सा के विकास द्वारा मन और प्राण की बाहरी बाधाएँ अपने-आप ही कम हो जायेंगी।

*

मन और हृदय को उद्घाटित और अन्तर्मुख तथा ऊर्ध्वमुख रखो ताकि जब अन्दर से स्पर्श आये या ऊपर से प्रवाह उतरे तो तुम उसे ग्रहण करने के लिए तैयार होओ।

*

तुमसे जो सबसे अधिक माँगा जाता है वह है—'प्रकाश' की ओर मुड़े रहने की दृढ़ निश्चयता। हम जितना सोचते हैं 'प्रकाश' उससे अधिक हमारे निकट होता है और किसी भी क्षण उसका मुहूर्त आ सकता है।

*

'भागवत कृपा' के लिए अपने हृदय को तैयार रखो ताकि जब वह आये तो हृदय उसे ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हो।

*

अपने अन्दर और जगत् के अन्दर जो कार्य करना है उसके लिए दृढ़ाग्रही संकल्प का होना अभी तुम्हारे लिए सबसे अधिक आवश्यक कार्य हो; तब तुम आध्यात्मिक परिणाम पाकर रहोगे, तब तुम्हारी सत्ता विकसित होगी और तुम्हारी अन्तरात्मा भागवत 'प्रकाश' और 'शक्ति' के स्पर्श के प्रति प्रस्तुत रहेगी।

*

जब 'प्रकाश' उस निश्चेतना में प्रवेश करता है जो व्यक्ति की सत्ता के चारों तरफ़ बाड़ की तरह लगी रहती है और उसके अन्दर की सच्ची चेतना को अभिव्यक्त होने से रोकती या सीमित कर देती है, जब वह प्रकाश व्यक्ति की अवचेतना से उठती आदतों और उसकी उसी समान उत्तेजना के निरन्तर दोहराव का निषेध कर देता है जो उसके चारों ओर घेरा डाले रहती है, केवल तभी व्यक्ति की प्रकृति पूरी तरह मुक्त हो सकती है और केवल तभी वह ऊपर के 'सत्य' को प्रत्युत्तर दे सकता है।

*

योग के रथ के चार पहिये हैं—ज्ञान की स्पष्टता और आन्तरिक आत्म-दृष्टि, अहंकार को वश में करना, प्रेम, और चौथा है, निस्स्वार्थ तथा समर्पित कार्यों में ईमानदारी-भरा अध्यवसाय। जिसके पास ये हों वह पथ पर सुरक्षित रूप से आगे बढ़ेगा।

*

शान्त तथा सूर्यालोकित पथ से होते हुए, 'प्रकाश' तथा 'आनन्द' के आवास की ओर श्रद्धा, विश्वास और हर्ष के साथ बढ़ते चलो।

*

'क' को उसके जीवन के इस वर्ष के लिए मेरे आशीर्वाद जिसका आज आरम्भ हो रहा है।

*

तुम्हारे जन्मदिन पर मेरे आशीर्वाद। जीवन के इस नूतन वर्ष के साथ-साथ तुम आत्मा में भी विकसित होओ।

इस दिवस तथा इस वर्ष के लिए मेरे आशीर्वाद। श्रद्धा में विकसित होओ, प्रकाश में विकसित होओ, चेतना में विकसित होओ।

*

तुम्हारे जन्मदिन के लिए मेरे आशीर्वाद। ऐसा हो कि यह वर्ष तुम्हारे लिए चेतना में तथा भगवान् के साथ ऐक्य में एक क़दम आगे बढ़ना हो।

*

इस वर्ष के लिए मेरे आशीर्वाद। ऐसा हो कि यह तुम्हारी चेतना में प्रगति करने और प्रभु की ओर बढ़ने में सहायक हो।

*

तुम्हारे जन्मदिन पर मेरे आशीर्वाद। वर दे कि यह वर्ष तुम्हारी आन्तरिक तथा बाह्य, दोनों सत्ताओं के लिए अधिकाधिक प्रगति का वर्ष हो।

*

ईमानदारी, भक्ति, आत्म-समर्पण, निस्स्वार्थ कर्म तथा सेवा, निरन्तर अभीप्सा—ये हैं सबसे सरल तथा सबसे प्रभावकारी तरीक़े जिनसे अन्तरात्मा को भगवान् की अचल-अटल उपस्थिति के लिए तैयार किया जा सकता तथा उपयुक्त बनाया जा सकता है।

*

हमेशा अपने अन्दर की चैत्य अग्नि को प्रज्वलित कर धधकाये रखो, वह है, अभीप्सा, भक्ति और आत्म-समर्पण की अग्नि—प्राण की कामनाओं और स्वार्थी प्रतिक्रियाओं के सीलनभरे सुलगते कुन्दों से उस अग्नि का दम मत घोंटो। अगर वह स्थायी और सतत बन जाये तो आध्यात्मिक रूपान्तर को नीचे उतारना आसान हो जायेगा।

*

भगवान् के प्रति भक्ति, उनके कार्य के प्रति कर्तव्यनिष्ठा और उनकी इच्छा के प्रति आज्ञाकारिता—ये हैं योग के पहले सहारे। इन्हीं खम्भों पर बाक़ी सब कुछ टिकाया जा सकता है।

*

अपनी चेतना को शान्त-विस्तृत करो; अपनी अन्तरात्मा में गभीर उतरो।

*

वह स्पष्टदर्शी चेतना जिसके अन्दर समस्त निश्चेतना को निकाल बाहर

करने का बल होता है और जो 'प्रकाश' से आने वाली प्रत्येक वस्तु का खुली बाँहों से स्वागत करती है—उसे पाना ही तुम्हारा लक्ष्य हो।

*

हमेशा चेतना को अधिकाधिक विकसित करते रहो ताकि भौतिक चेतना से सभी छोटी-मोटी बाधाएँ और प्राणिक प्रकृति के सभी अन्धकारमय भाग ग़ायब हो जायें।

*

अपने-आपको श्रद्धा तथा आत्म-उद्घाटन द्वारा प्रस्तुत रखो ताकि जब 'प्रकाश' आये, तुम उसे ग्रहण कर सको।

*

मन को शान्त रखो और 'प्रकाश' को ग्रहण करो; प्राण को शान्त रखो और उद्धारक 'शक्ति' को ग्रहण करो।

*

ऐसा हो कि जो वर्ष आरम्भ हो रहा है वह तुम्हारी चैत्य सत्ता के विकास में एक निश्चित पड़ाव हो और इसकी शक्ति तुम्हारे स्वभाव और तुम्हारे जीवन पर शासन करे।

*

स्वयं को उद्घाटित करते रहो और चैत्य चेतना तुम्हारे अन्दर विकसित होती रहेगी तथा मन एवं प्राणिक सत्ता में जो कुछ परछाइयों के तले पड़ा है वह सब 'प्रकाश' के द्वारा शुद्ध और प्रकाशित हो जायेगा।

*

साधना के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है उस पथ पर बढ़ते रहना जो सम्पूर्ण चैत्य परिवर्तन की ओर ले जाता है, क्योंकि आध्यात्मिक रूपान्तरण के लिए वही सीधा रास्ता है। भक्ति, सामञ्जस्य तथा कार्य में ईमानदारी, विकसनशील आन्तरिक दृष्टि तथा चेतना, प्राणिक अहं की अधिक उग्र गतियों का अधिकाधिक मन्द पड़ना—ये सब पथ के प्रमुख मील के पत्थर हैं।

*

जड़-भौतिक जो 'प्रकाश' के प्रति अन्धा, पुकार के प्रति बहरा होता है और जड़-भौतिक चेतना तथा जड़-भौतिक जीवन—ये सब हैं जो अन्त तक अचेतना की शरण में बने रहते और प्रतिरोध करते रहते हैं। जब इस

पर विजय पा ली जाती है तब निर्णायक रूपान्तर का रास्ता खुल जाता है।

एक साधक के लिए प्रार्थनाएँ तथा अन्य सन्देश

प्रभो! मुझे क्रोध, कृतघ्नता और मूर्खताभरे दर्प से मुक्त कर दे। मुझे शान्त, नम्र और कोमल बना। वर दे कि मैं अपने कार्य में और अपनी समस्त क्रिया में तेरे ही भागवत नियन्त्रण का अनुभव करूँ।

*

मैं प्रार्थना करता हूँ कि मैं अपनी इच्छा और अपने ही आग्रह पर डटा न रहूँ, मुझे उससे मुक्त और शुद्ध कर दे ताकि मैं श्रीमाँ के प्रति विनम्र तथा आज्ञाकारी बन जाऊँ और उनके कार्य के लिए उपयुक्त यन्त्र बन सकूँ, जो कुछ भी करूँ, उनके प्रति सतत समर्पित रहूँ और उन्हीं की 'कृपा' के पथ-प्रदर्शन में चलता चलूँ।

*

वर दे कि आज और अभी से मैं अपने सभी दोषों और त्रुटियों को निकाल बाहर कर दूँ, वर दे कि यह मैं पूरी ऊर्जा और दृढ़ता के साथ तब तक करता रहूँ जब तक कि इसमें पूरी तरह से सफल न हो जाऊँ। वर दे कि मैं समस्त अक्खड़पन, झगड़ालू प्रवृत्ति, स्वाभिमान तथा दर्प, श्रीमाँ के प्रति अवज्ञा और विद्रोह, दूसरों के प्रति घृणा और विद्वेष, वाणी तथा आचरण में उग्रता, मिथ्यात्व, स्वाग्रह और माँग, असन्तोष तथा शिकायत से मुक्त हो जाऊँ। वर दे कि मैं सभी के साथ मित्रता बनाये रखूँ और किसी के भी प्रति दुर्भावना को न पोसूँ। वर दे कि मैं श्रीमाँ का सच्चा बालक बनूँ।

*

यह वह सबक है जो जीवन हमेशा व्यक्ति को सिखाता है कि इस जगत् में हर चीज़ उसे विफल कर देती है—अगर वह भगवान् की ओर पूरी तरह से मुड़ जाये तो एकमात्र वे ही हैं जो उसे विफल नहीं करते। ऐसी बात नहीं है कि चूँकि तुम्हारे अन्दर कोई बुरी चीज़ है इसलिए प्रहार तुम्हारे ऊपर पड़ता है—सभी मनुष्यों को आघात इसलिए सहने पड़ते हैं क्योंकि वे ऐसी चीज़ों को पाने के लिए कामनाओं से भरे रहते हैं जो हमेशा बनी नहीं रह सकतीं और कभी तो वे उन्हें पा नहीं सकते, उन्हें खो बैठते हैं, और अगर पा भी लें, कुछ समय बाद वही चीज़ उनके अन्दर निराशा ले

आती है और उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर पाती। 'भगवान्' की ओर मुड़ना ही जीवन का एकमात्र सत्य है।

*

तुम्हें अपने अन्दर उस शान्ति को विकसित करना ही चाहिये जो विजय की निश्चिति से उत्पन्न होती है।

*

'प्रकाश' की विजय पर दृढ़ विश्वास रखो और शान्ति से भरी समानता के साथ जड़-भौतिक के प्रतिरोधों और मानव व्यक्तित्व का सामना करो, उन्हें उनके रूपान्तर पर छोड़ दो।

*

हमारे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं। डटे रहो और पूर्ण भरोसा तथा विश्वास रखो।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ८३८-४४ **श्रीअरविन्द**

शिष्यों को दिये गये माँ के सन्देश[१]

मेरे प्रिय बालक, मेरा प्रेम और मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं और सारे साल रहेंगे। ये तुम्हें भागवत लक्ष्य की ओर एक और प्रगति करने में सहायक हों।

*

यह वर्ष प्रगति और रूपान्तर का वर्ष हो—भागवत सिद्धि की ओर ले जाने वाला एक और पग।

*

यह वर्ष तुम्हारे लिए पूर्ण उद्घाटन और सीमाओं को तोड़ने का वर्ष हो।

*

यह वर्ष तुम्हारे अन्दर सच्ची श्रद्धा लाये—ऐसी श्रद्धा जिसे कोई भी अन्धकार धुँधला न बना सके।

*

[१] माताजी जन्मदिन को विशेष महत्त्व दिया करती थीं, इसको फ्रेंच में 'बॉन फ़ेत' Bonne Fête कहा जाता है। आशीर्वाद के साथ-साथ माताजी कुछ लोगों को छोटा-मोटा लिखित सन्देश भी देती थीं। यहाँ ऐसे सन्देशों के कुछ नमूने दिये जा रहे हैं। —अनु.

तुम्हारा यह जन्मदिन तुम्हारे लिए अपने-आपको ज़रा अधिक, ज़रा ज़्यादा अच्छी तरह भगवान् को देने का अवसर हो। तुम्हारा उत्सर्ग अधिक पूर्ण हो, तुम्हारी भक्ति अधिक प्रबल और अभीप्सा अधिक तीव्र हो।

अपने-आपको 'नये प्रकाश' की ओर खोलो और आनन्दभरे क़दमों से मार्ग पर चलो।

इस दिन निश्चय करो कि ऐसा ही हो और दिन व्यर्थ न जायेगा।

*

रत्ती-भर अभ्यास सिद्धान्तों के पहाड़ों के बराबर है।

"प्रभो, मेरे जन्म की वर्षगाँठ पर वर दे कि मेरे अन्दर जानने की शक्ति मुझे पूर्णतया रूपान्तरित करने की शक्ति में बदल जाये।"

*

जन्म दिवस शुभ हो!

नव जन्म भी, एक नयी चेतना में जन्म हो जिसमें तुम समस्त छोटी-मोटी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं के ऊपर हो जाओगे क्योंकि तुम हमेशा अपने हृदय में भगवान् की उपस्थिति का अनुभव करोगे, यह तुम्हें ऐसी शक्ति दे कि तुम समस्त बाधाओं, समस्त तुच्छता, समस्त कठिनाइयों को पार कर सको।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

*

आज के दिन हम सत्य की विजय की ओर एक निर्णायक पग उठाने का निश्चय करते हैं।

हर बीतता हुआ वर्ष एक नयी विजय हो, और ऐसा अनिवार्य रूप से होता है।

इस वर्ष उनकी विजय की ओर एक निर्णायक क़दम उठाया जाये।

*

तुम्हारे लिए जो नया वर्ष शुरू हो रहा है इसके साथ तुम्हें नया जीवन शुरू करना चाहिये, इसमें फिर से एक नया दृढ़ निश्चय हो कि तुम अपनी चेतना और अपने कर्मों में से उस सबको निकाल बाहर करो जो उसे कुरूप बनाता, छोटा करता, धुँधला बनाता, और अन्ततः तुम्हारी प्रगति को रोक देता है और तुम्हारे स्वास्थ्य को बिगाड़ता है।

अपने आन्तरिक विकास के और पवित्रीकरण के प्रयास में विश्वस्त

रहो कि मेरी शक्ति और मेरे आशीर्वाद तुम्हें सहारा देंगे।

*

शुभ जन्म दिवस!

यह वर्ष तुम्हारे लिए कार्य की और उत्सर्ग की पूर्णता का, सच्चाई, ऊर्जा और शान्ति की पूर्णता का वर्ष हो।

मेरे आशीर्वाद सहित।

*

शुभ जन्म दिवस!

प्रेम और शान्ति में पूर्ण उत्सर्ग और समग्र प्रगति के वर्ष के लिए मेरे आशीर्वाद सहित।

*

शुभ जन्म दिवस!

नीरव सहनशीलता में, विजय की ओर शाश्वत प्रेम की सहायता के साथ, एक और पग आगे।

*

शुभ जन्म दिवस!

शान्ति, प्रेम और आनन्द में भागवत सिद्धि की ओर ले जाने वाले ज्योतिर्मय मार्ग पर एक और पद अंकित करने के लिए।

*

शुभ जन्म दिवस!

सहयोग के जीवन के लिए मेरा प्रेम तथा शान्ति और प्रेम में दीर्घकाल तक बने रहने के लिए मेरा सुखद सहयोग और मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हों।

*

शुभ जन्म दिवस!

रूपान्तर के लिए मेरे प्रेम, मेरे विश्वास और मेरे आशीर्वाद सहित।

सिद्धि की ओर आगे बढ़ो।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ.२२०-२३

हमारे कर्मों का स्वामी जब हमारी प्रकृति का रूपान्तर कर रहा होता है तब भी वह इसका मान करता है; वह सदा हमारी प्रकृति के द्वारा ही अपनी क्रिया करता है, मन की मौज के अनुसार नहीं। हमारी इस अपूर्ण प्रकृति में हमारी पूर्णता की सामग्री भी निहित है, पर वह अविकसित, विकृत तथा स्थानभ्रष्ट है और अव्यवस्था या त्रुटिपूर्ण दुर्व्यवस्था के साथ एक ही जगह पटकी हुई है। इस सब सामग्री को धैर्यपूर्वक पूर्ण बनाना है, शुद्ध, पुनर्व्यवस्थित, नव-घटित तथा रूपान्तरित करना है; इसे न तो छिन्न-भिन्न तथा नष्ट-भ्रष्ट या क्षत-विक्षत करना है और न ही बल-प्रयोग या इनकार के द्वारा मिटा ही देना है। यह संसार तथा इसमें रहने वाले हम सब उसी की रचना एवं अभिव्यक्ति हैं, और वह इसके साथ तथा हमारे साथ ऐसे ढंग से बर्ताव करता है जिसे हमारा क्षुद्र एवं अज्ञानी मन तब तक नहीं समझ सकता जब तक वह शान्त होकर दिव्य ज्ञान के प्रति उन्मुक्त न हो जाये। हमारी भूलों में भी एक ऐसे सत्य का तत्त्व रहता है जो हमारी टटोलती हुई बुद्धि के प्रति अपना अर्थ प्रकाशित करने का प्रयत्न करता है। मानव-बुद्धि भूल को अपने अन्दर से निकालती है, पर साथ-ही-साथ सत्य को भी निकाल फेंकती है और उसके स्थान पर एक और अर्ध-सत्य, अर्ध-भ्रान्ति को ला बिठाती है। परन्तु भागवत प्रज्ञा हमारी भूलों को तब तक बनी रहने देती है जब तक हम प्रत्येक मिथ्या आवरण के नीचे गुप्त और सुरक्षित रखे हुए सत्य को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो जाते। हमारे पाप उस अन्वेषक शक्ति के भ्रान्त पग होते हैं जिसका लक्ष्य पाप नहीं, वरन् पूर्णत्व होता है, अथवा एक ऐसा कर्म होता है जिसे हम दिव्य पुण्य कह सकते हैं। बहुधा वे एक ऐसे गुण को ढकने वाले परदे होते हैं जिसे रूपान्तरित करके इस भद्दे आवरण से मुक्त करना होता है; अन्यथा, वस्तुओं के पूर्ण विधान में, उन्हें पैदा होने या रहने ही न दिया जाता। हमारे कर्मों का स्वामी न तो प्रमादी है न उदासीन साक्षी और न ही अनावश्यक बुराइयों की रंगरेलियों से मन बहलाने वाला, वह हमारी बुद्धि से अधिक ज्ञानी है, वह हमारे पुण्य से भी अधिक ज्ञानी है।

CWSA खण्ड २३, पृ. २४७-४८ **श्रीअरविन्द**

नवजन्म

चैत्य का नवजन्म

अन्तरात्मा, चैत्य सत्ता भागवत 'सत्य' के सीधे सम्पर्क में होती है, लेकिन वह मनुष्य के *मानस, प्राण तथा अन्न* (मन, प्राण तथा भौतिक) के द्वारा छिपा दी जाती है। मनुष्य योगाभ्यास करके मन में प्रकाश और विवेक पा सकता है, वह शक्ति पर प्रभुत्व पाकर प्राण में हर तरह के सुखानुभवों में रमा रह सकता है; यहाँ तक कि वह चमत्कारिक भौतिक-सिद्धियाँ भी पा सकता है; लेकिन अगर पृष्ठभूमि में सच्ची आन्तरात्मिक शक्ति प्रकट न हो, अगर चैत्य प्रकृति सम्मुख न आये तो कहा जा सकता है कि कोई भी सच्चा कार्य वस्तुतः सम्पन्न नहीं हुआ है। इस योग में चैत्य सत्ता वह है जो मनुष्य की बाक़ी प्रकृति को सच्चे अतिमानसिक प्रकाश और अन्त में परमानन्द की ओर उद्घाटित करती है। मन अपने उच्चतर स्तरों की ओर स्वयं को खोल सकता है; वह अचञ्चल रह कर निर्वैयक्तिक में विस्तृत हो सकता है; वह किसी तरह की निश्चल मुक्ति या निर्वाण में स्वयं को आध्यात्मिक बना सकता है; लेकिन अतिमानस केवल आध्यात्मिक-भावापन्न मन में अपना पर्याप्त आधार नहीं पा सकता। अगर अन्तरतम अन्तरात्मा जाग्रत् हो जाये, अगर मानसिक, प्राणिक और भौतिक सत्ता से चैत्य चेतना का जन्म हो जाये, तब यह योग किया जा सकता है; अन्यथा (मात्र मन या किसी भी अन्य भाग द्वारा) इसे करना असम्भव है। बौद्धिक ज्ञान या मानसिक विचार या किसी प्राणिक कामना की आसक्ति के कारण अगर चैत्य के नवजन्म के लिए अस्वीकृति हो, अगर माँ का नवजात बालक बनने के लिए स्वीकृति न हो तो साधना में असफलता प्राप्त होगी।

CWSA खण्ड ३०, पृ. ३३७-३८ **श्रीअरविन्द**

क्या है नवजन्म

जिसे "नव जन्म" कहा जाता है वह आध्यात्मिक जीवन में, आध्यात्मिक चेतना में जन्म है, वह अपने अन्दर आत्मा की किसी ऐसी चीज़ को वहन करना है जो अन्तरात्मा के द्वारा, व्यक्तिगत रूप से, जीवन को शासित करना और अस्तित्व की स्वामिनी बनना शुरू कर सकती है। लेकिन

अतिमानसिक जगत् में आत्मा ही सचेतन रूप से, सहज-स्वाभाविक रूप से समग्र जगत् की और इसकी सब अभिव्यक्तियों और अभिव्यञ्जनाओं की स्वामिनी होगी।

व्यक्तिगत जीवन में इसी से सारा अन्तर पड़ जाता है; जब तक तुम आत्मा के बारे में बोलते-भर हो, इसके बारे में कुछ पढ़ा है, इसके अस्तित्व का धुँधला-सा परिचय है, यह चेतना के लिए कोई बहुत मूर्त वास्तविकता नहीं है, तो इसका मतलब है कि तुम आत्मा में नहीं जन्मे हो। और जब तुम आत्मा में जन्म ले लेते हो तो यह सारे स्थूल जगत् से अधिक मूर्त, कहीं अधिक जीवन्त, कहीं अधिक सत्य और कहीं अधिक प्रत्यक्ष हो जाती है। और इसी के कारण मनुष्यों में सारभूत भेद होता है। जब **यह** अनायास रूप से सत्य बन जाती है—सच्चा, ठोस अस्तित्व, ऐसा वातावरण जिसमें तुम स्वच्छन्दता से साँस ले सको—तब तुम जान जाते हो कि तुम उस पार चले गये हो। पर जब तक यह अस्पष्ट और धुँधली-सी रहती है—तुमने इसके बारे में कही गयी बातें सुनी-भर हैं, तुम जानते हो कि इसका अस्तित्व है लेकिन...। यह ठोस वास्तविकता नहीं बनी—तो इसका अर्थ है कि अभी तक तुम्हारा नवजन्म नहीं हुआ है। जब तक तुम अपने-आपसे यह कहते हो: "हाँ, इसे मैं देखता हूँ, इसे छूता हूँ, मैं जो पीड़ा भोगता हूँ, जो भूख मुझे सताती है, जो नींद मुझ पर हावी होती है, वही सत्य है, सचमुच यही ठोस है...।" *(माताजी हँसती हैं)* तो इसका अर्थ है कि तुम अभी तक उस पार नहीं गये हो, आत्मा में नहीं जन्मे हो।

अधिकतर मनुष्य बन्दी-जैसे हैं

असल में अधिकतर मनुष्य क़ैदी के समान हैं जिनके लिए सब दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द हैं, अतः उनका दम घुटता है, यह बिलकुल स्वाभाविक है। लेकिन उनके पास वह कुञ्जी है जो दरवाज़ों और खिड़कियों को खोल सकती है, पर वे उसका उपयोग नहीं करते...। निश्चय ही, ऐसा भी समय होता है जब उन्हें यह मालूम नहीं होता कि उनके पास कुञ्जी है, परन्तु इसे जान लेने के बहुत बाद में भी, यह बताये जाने के बहुत बाद भी वे इसका उपयोग करने से झिझकते हैं और उन्हें सन्देह होता है कि इसमें दरवाज़े और खिड़कियाँ खोलने की क्षमता है भी। और क्या दरवाज़े और

खिड़कियाँ खोलना अच्छा होगा! यह महसूस कर लेने पर भी कि "आख़िर, शायद यह अच्छा ही हो", थोड़ा डर बना रहता है: "जब ये दरवाज़े और खिड़कियाँ खुल जायेंगे तो क्या होगा?..." और वे डरे रहते हैं। उन्हें उस प्रकाश और स्वतन्त्रता में खो जाने का डर होता है। वे उसी में बने रहना चाहते हैं जिसे वे "अपना-आपा" कहते हैं। उन्हें अपना मिथ्यात्व और अपना बन्धन पसन्द है। उनमें कुछ चीज़ इसे पसन्द करती है और इससे चिपटी रहती है। वे इस ख़याल में रहते हैं कि अपनी सीमाओं के बिना उनका अस्तित्व ही नहीं रहेगा।

इसीलिए यात्रा इतनी लम्बी है, इसीलिए यह इतनी दुरूह है। क्योंकि यदि सचमुच कोई अपनी अस्तित्वहीनता के लिए सहमत हो तो सब कुछ कितना आसान, द्रुत, आलोकमय और आनन्दमय हो जायेगा—पर शायद उस तरह नहीं जैसे लोग हर्ष और आसानी को समझते हैं। तथ्य तो यह है कि ऐसे लोग बहुत कम हैं जिन्हें संघर्ष पसन्द नहीं है। बहुत कम लोग इस बात से सहमत होंगे कि रात का न होना सम्भव है, वे प्रकाश की कल्पना अन्धकार के उलटे रूप के सिवाय कर ही नहीं सकते: "छायाओं के बिना चित्र न होगा, संघर्ष के बिना विजय न होगी और कष्ट-सहन के बिना आनन्द न होगा।" बस, यही उनकी धारणा है, और जब तक कोई इस तरह सोचता है तब तक, आत्मा में उसका जन्म नहीं हुआ है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ४६७-६८

यह सच है कि तुम्हारी आत्मा मेरे साथ है—हमेशा मेरे साथ ही है। मेरी कामना है कि शरीर से भी तुम मेरे साथ रहो; क्योंकि शरीर तभी प्रसन्न रह सकता है जब वह आत्मा के साथ युक्त हो जाये।

सबसे ज़्यादा अच्छा होगा कि कोई भी निर्णय पहले से ही न ले लो।

इस बीच, तुम सदा मेरी प्रेम-भरी भुजाओं में समाना सीख जाओ, फिर तुम्हें कुछ भी प्रभावित नहीं कर सकेगा।

अपने प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

हुता की पुस्तक, 'सफ़ेद गुलाब' से *११ अप्रैल १९५६*

संस्मरण तथा जीवन की झाँकियाँ

चम्पकलाल का जन्मदिन

आज, मेरे जन्मदिन की पूर्व-सन्ध्या पर, श्रीमाँ ने मेरे गले में तुलसी की एक माला यह कहते हुए पहनायी : "अपने-आपको भक्ति से बाँध लो।" जैसा कि तुम सब जानते ही हो, तुलसी का उन्होंने आध्यात्मिक अर्थ भक्ति दिया है।

१ फ़रवरी १९२९

द्युमान् का जन्मदिन

उन दिनों श्रीमाँ उन आश्रमवासियों को छोटी छत से (माधव पण्डित के कमरे के ऊपर की छत) दर्शन दिया करती थीं जो नीचे आँगन में इकट्ठा होते थे। उस छत पर पूजालाल बुहारू लगाया करते थे। और माँ के 'सालौं' (छोटी बैठक) के बाहर की छत की सफ़ाई करना द्युमान् का काम था। द्युमान् और पूजालाल माधव के दफ़्तर की दक्षिणी छत के ज़ीने से ऊपर जाया करते थे।

द्युमान् जिस छत को साफ़ करते थे उसका दरवाज़ा सामान्यतया बन्द ही रखा जाता था क्योंकि उसके बगल के कमरे में बैठ कर श्रीअरविन्द कभी-कभी चिट्ठियों का जवाब दिया करते थे। माँ का सोफ़ा पश्चिमी दीवाल से सटा कर रखा हुआ था। कभी-कभी श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ दोनों ही बड़े सवेरे तक काम करते रहते थे। और जब कभी माँ द्युमान् से कुछ कहना चाहतीं जब वे सफ़ाई किया करते, तो वे ज़रा-सा दरवाज़ा खोल, बाहर झाँक कर, उनसे बात कर लिया करती थीं।

एक बार माँ ने द्युमान् को बतलाया कि आज श्रीअरविन्द ने ७२ चिट्ठियों का जवाब दिया—सचमुच कितनी विलक्षण, अद्‌भुत बात थी!

एक दफ़ा उन्होंने द्युमान् से कहा : "आज बुधवार है, रसोई में विशेष भोजन बनाया जा रहा है। और आज तुम्हारा जन्मदिन भी है। तो तुम तारा से कहना कि वह कुछ विशेष व्यञ्जन बनाये।" तो सब मिला कर उस रोज़ ११ व्यञ्जन बनाये गये!

Champaklal Speaks पुस्तक से

१९ जून १९३५

दो कमल

मैं माँ को कुछ भेंट करना चाहता था। दो कमल आँकने का विचार मेरे अन्दर जगा—एक श्वेत कमल, दूसरा लाल कमल।

देखो, आश्चर्य की बात यह कि मुझे उस दिन दो सुन्दर कमल मिले और मैंने अपनी पेंटिंग शुरू कर दी। लेकिन और कामों की वजह से मैं उन्हें एक ही दिन में समाप्त न कर पाया। मेरी दूसरी पेंटिंग्स की तरह इन्हें भी मैं दोपहर के भोजन समय ही किया करता, इसमें मुझे बड़ा आनन्द मिलता। उन्हें समाप्त करने में कुछ दिन लग गये।

मैं थोड़ा-थोड़ा करके उन पर काम कर रहा था। स्वाभाविक है कि अगर मैं एक ही बार में बैठ कर पेंटिंग पूरी कर लेता तो रंगों की छटा ज़्यादा सुन्दर होती। बहरहाल, परिणाम बुरा नहीं था और बड़े आनन्द के साथ, २ फ़रवरी १९४० को, अपने जन्मदिन पर मैं अपनी दोनों पेंटिंग्स माँ के पास ले गया।

उन्होंने बड़े चाव से उन्हें लिया और ख़ुशी से वे चहक उठीं: "ओह! बहुत सुन्दर! बहुत सुन्दर!" उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि यह सब आँकने के लिए मुझे कब समय मिला! उन्होंने दोनों हाथों से उन्हें पकड़ा और एक बड़ी मुस्कान के साथ मेरी तरफ़ बढ़ाते हुए वे बोलीं: "मैं इन्हें तुम्हें देती हूँ चम्पकलाल! इन्हें ले लो, ये तुम्हारे लिए हैं। ये बहुत सुन्दर हैं। इन्हें तुम रखो।"

मैंने उत्तर नहीं दिया और न ही उन्हें लिया। उन्होंने अपनी बात दोहरायी: "ले लो चम्पकलाल! मैं उपहार-स्वरूप तुम्हें यह प्रदान करती हूँ।"

चम्पकलाल—"लेकिन माँ! ये मैंने आपके लिए बनायी हैं।"

मेरे मन की अवस्था देख, उन्होंने एक तरीक़ा निकाला। एक बड़ी मुस्कान देते हुए, बहुत धीमे से, क़रीब-क़रीब फुसफुसाते हुए वे बोलीं: "चम्पकलाल, मैं इन्हें श्रीअरविन्द के पास ले जाऊँगी और उन्हें इन पर कुछ लिखने को कहूँगी।"

मैंने कहा: "माँ! आप इन्हें श्रीअरविन्द के पास ले जायेंगीं? अगर ऐसा है तो आपकी बड़ी कृपा होगी कि आप उनसे इनका प्रतीकात्मक अर्थ लिखने को कहें। माँ! श्रीअरविन्द श्वेत कमल पर लिखें और आप

लाल कमल पर।"

जब माँ उन्हें श्रीअरविन्द के पास लायीं, मैं वहीं पर था। उन्होंने श्रीअरविन्द को वह दिखलाते हुए कहा : "देखिये, कितने सुन्दर हैं ये! आज चम्पकलाल का जन्मदिन है; उसने मेरे लिए ये पेंटिंग्स बनायी हैं। अगर आप इनका प्रतीकात्मक अर्थ इन पर लिख दें तो मैं इन्हें उसे दे दूँगी। वह चाहता है कि आप श्वेत कमल पर लिखें और मैं लाल कमल पर।"

बहुत ही सुन्दर, अनुराग-भरे स्मित के साथ श्रीअरविन्द ने कहा : "हुँ...।" फिर उन्होंने श्वेत कमल के ऊपर लिखा :

अदिति
भगवती माँ
और लाल कमल के नीचे उन्होंने लिखा :
चम्पकलाल को
आशीर्वाद के साथ
२.२.४०
श्रीअरविन्द

लिख चुकने के बाद उन्होंने मुझे देखा और एक मधुर मुस्कान बिखेर दी। फिर लाल कमल के ऊपर माँ ने लिखा :

अवतार
श्रीअरविन्द
और श्वेत कमल के नीचे उन्होंने लिखा :
मेरे प्रिय बालक को आशीर्वाद के साथ
२.२.४०
माँ

माँ ने मुझसे कहा था कि कमल की उन पेंटिंग्स को मैं किसी को भी न दिखलाऊँ।

लेकिन जानते हो, कई वर्षों के बाद इन पेंटिंग्स के 'ब्लॉक्स' बनवा

कर, वितरण के लिए इन्हें छपवाया गया। यह मत पूछो कि पहले माँ ने मुझे उन्हें किसी को भी दिखाने से मना क्यों किया था और क्यों बाद में चीज़ें बदल गयीं। स्पष्ट रूप से परिस्थितियाँ बदल गयी थीं और माँ कभी भी पहले कही गयी अपनी बात पर कड़ाई के साथ डटी नहीं रहती थीं, मानों एक बार जो उन्होंने कह दिया वह वेद-वाक्य हो गया और भिन्न परिस्थितियों में उसे बदला नहीं जा सकता हो। इस तरह के बहुतेरे उदाहरण हैं।

Champaklal Speaks पुस्तक से

ककहरा

आज एक बच्ची का जन्मदिन था। माता-पिता चाहते थे कि बच्ची की वर्णमाला का प्रारम्भ माँ से हो। दयामयी माँ ने उस छोटी बच्ची के हाथ में एक क़लम पकड़ाया और उससे अंग्रेज़ी में MA (माँ) लिखवाया।

Champaklal Speaks पुस्तक से १८ फ़रवरी १९४६

एक बन्दर का जन्मदिन

ईवॉन (एक आश्रमवासिनी) ठॉथ को—वह बन्दर जिसे उसने गोद ले रखा था—माँ के पास लेकर आयी, क्योंकि उस दिन ठॉथ का जन्मदिन था। बातचीत माँ के 'म्यूज़िक रूम' में हुई। मैं वहीं माँ के पास बैठा हुआ था।

यह बहुत मज़ेदार था कि जिस पल से ठॉथ कमरे के अन्दर आया उसने न केवल माँ से, बल्कि मेरे साथ भी ऐसा बरताव किया मानों वह हम दोनों को जानता हो। वह माँ की गोद में बैठा, हाथ जोड़ कर उसने नमस्कार किया और हमारी ओर इतनी अद्‌भुत दृष्टि डाली कि बखान नहीं किया जा सकता! माँ ने उसे खाने को वह फूल दिया जिसका प्रतीकात्मक नाम उन्होंने 'श्रीअरविन्द की अनुकम्पा' दिया है (अंग्रेज़ी नाम—Rose Moss)। वह उसका प्रिय खाद्य था। कुछ देर तक वह खेलता रहा, फिर लपक कर मेरे सिर पर आ बैठा और मेरे साथ भी वह ख़ूब खेला! कितना मानवीय था सब कुछ!

माँ जहाँ कहीं कोई सम्भावना देखतीं, हमेशा मदद करने के लिए तत्पर रहतीं।

Champaklal Speaks पुस्तक से २७ अप्रैल १९६४

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

मार्च

१. भागवत उपस्थिति ही जीवन को मूल्य प्रदान करती है। यह उपस्थिति ही सारी शान्ति, सारी उत्फुल्लता और सारी सुरक्षा का स्रोत है। इस उपस्थिति को अपने अन्दर अनुभव करो और तुम्हारी सारी कठिनाइयाँ विलीन हो जायेंगी।

२. मेरे प्रेम और मेरे आशीर्वाद से लिपटी हुई मेरी भुजाओं में सिमटी रहो।

३. बुरे विचार बुरी भावनाओं को जन्म देते हैं, बुरी भावनाएँ तुम्हें भगवान् से दूर ले जाती हैं और तुम्हें असुर के हाथों में असुरक्षित फेंक देती हैं जो केवल तुम्हें निगल जाना चाहता है—और यह है अन्तहीन दुःख-कष्ट का स्रोत।

४. सवेरे की प्रार्थना : हे मेरे परम प्रभु, मेरी मधुर माँ, मैं तुम्हारी बनूँ, निरपेक्ष रूप से तुम्हारी, पूर्ण रूप से तुम्हारी। तुम्हारी शक्ति, तुम्हारी ज्योति और तुम्हारा प्रेम मुझे सारी आपदाओं से बचायें।

५. मध्याह्न की प्रार्थना : हे मेरे प्रभु, मधुर माँ, मैं तुम्हारी हूँ और अधिकाधिक पूर्ण रूप से तुम्हारी बनी रहने की प्रार्थना करती हूँ।

६. रात्रि की प्रार्थना : हे मेरे प्रभु, मधुर माँ, तुम्हारी शक्ति, तुम्हारी ज्योति और तुम्हारा प्रेम मेरे साथ हैं और तुम मुझे सब विपत्तियों से बचा लोगी।

७. पूर्णतया शान्त और अचञ्चल रह कर ही, भागवत कृपा में अडिग विश्वास और श्रद्धा रख कर ही तुम परिस्थितियों को यथासम्भव अनुकूल बना सकती हो। हमेशा सर्वोत्तम उन्हीं के साथ घटता है जिन्होंने सम्पूर्ण भरोसा भगवान् पर, केवल भगवान् पर किया है।

८. शान्त और विश्वस्त रहो और मुझे अपने अन्दर खोजने की कोशिश करो। यह तुम्हें रात को सोने में मदद करेगा।

९. जीवन के हर पल भगवान् इतने आश्चर्यजनक रूप से, सहज तरीक़े से हमारी रक्षा करते रहते हैं कि अपनी अन्धता में हमें इसका भान

तक नहीं होता। केवल जब हम शान्त भाव से उनकी भुजाओं में लिपटे रहते हैं और दूसरों की ओर से जो भी आये उससे अछूते रहते हैं, तभी हम उनकी आश्चर्यमयी सुरक्षा को देख और अनुभव कर सकते हैं।

१०. जब तक बाहरी परिस्थितियाँ तुम्हें उद्विग्न करती रहेंगी तब तक तुम भागवत शान्ति और हर्ष को बनाये नहीं रख सकोगी। उन्हें स्थायी रूप में पाने के लिए तुम्हें अपनी आन्तरिक चेतना में, बहुत गहराई में रहना होगा और केवल अपनी अभीप्सा और भागवत उपस्थिति के बारे में ही सोचना होगा।

११. ... तो जीवन ऐसा ही है।
इसे पार करने का एक ही रास्ता है। और वह है—प्रेम और एक मुस्कान।

१२. बाहरी गतिविधियाँ क्षणिक तरंगें हैं, उन्हें बहुत अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिये। अपनी श्रद्धा तथा अभीप्सा को अविकल बनाये रखना ही एकमात्र ध्यान देने-योग्य वस्तु है।

१३. मेरी प्यारी बच्ची, सचमुच यदि तुम सब कुछ भगवान् के संरक्षण में छोड़ दो तो तुम्हारा हृदय शान्ति में रहेगा और सभी चीज़ें यथासम्भव उत्तम तरीक़े से होंगी।

१४. सभी प्रतिरोधों के बावजूद सत्य विजयी होकर रहेगा।

१५. पूर्णयोग में साधना और बाह्य जीवन में कोई भेद नहीं; दैनिक जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप में सत्य को पाना और व्यवहार में लाना होगा।

१६. दुःख और अकेलेपन के पीछे, ख़ालीपन और अक्षमता की भावना के पीछे, हलकी और ऊष्मा प्रदान करने वाली भागवत उपस्थिति की सुनहली ज्योति चमक रही होती है।

१७. अन्दर की अस्त-व्यस्तता को ठीक कर लो तो सब कुछ ठीक हो जायेगा।

१८. झंझा-तूफ़ान में शान्ति, प्रयत्न में स्थिरता, समर्पण में उल्लास और आलोकित श्रद्धा—ये सब हों तो तुम भगवान् की स्थायी उपस्थिति का अनुभव कर सकोगी।

१९. चैत्य पुरुष ही तुम्हारा सच्चा स्व है और बाहरी सत्ता को उसकी ओर

खोल देने से भागवत सहायता को ग्रहण करने और विजय पाने में तुम सक्षम होओगी।

२०. अविद्या, अचेतना और विभाजन की ये विरोधी शक्तियाँ ही हैं जिन्होंने जगत् को इतना कष्टमय बना रखा है, जहाँ केवल अन्याय और पीड़ा हैं। लेकिन इन शक्तियों पर विजय पाने के लिए भगवान् कार्यरत हैं और चाहे जितना समय लग जाये, भगवान् की विजय सुनिश्चित और अवश्यम्भावी है।

२१. सदा आकाश की ओर इंगित करते मीनार की तरह तुम्हारी अभीप्सा ऊपर उठे—अथक, अकम्प रूप में। यह तुम्हारी सत्ता की सभी विषमताओं पर, सभी बाधा-विघ्नों और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर लेगी।

२२. उषा के सामने रात्रि का घने-से-घना अन्धकार भी विलीन होने को बाध्य है। अपनी आत्मा और इसकी अभीप्सा को याद रखो : सूर्य उदय होगा, यह निश्चित है।

२३. तीव्रतम शारीरिक पीड़ा को भी यदि शान्ति और स्थिरता के साथ झेला जाये तो वह कम हो जाती है, सह्य हो जाती है। घोर सन्ताप में भी यदि हम भगवान् पर निर्भर रह सकें तो भगवान् उस सन्ताप को आनन्द में बदल देते हैं।

२४. मैं तुम्हारे कार्य में तुम्हारे साथ हूँ, और मुझे विश्वास है कि वह सफल होगा।

मैं तुम्हारे जीवन में तुम्हारे साथ हूँ जो निश्चित ही तुम्हें तुम्हारे लक्ष्य तक ले जायेगा।

२५. तुम्हारा मन और तुम्हारे स्नायु शान्ति और विश्राम से भर उठें क्योंकि यही तुम्हारी समस्याओं का समाधान है—शान्ति, शान्ति, शान्ति, किसी छोटी-सी चीज़ से भी उत्तेजित न हो जाओ और तुम तुरन्त पहले से स्वस्थ अनुभव करोगी।

२६. मेरी प्यारी नन्हीं बच्ची,

अपने सम्पूर्ण प्यार के साथ मैं तुम्हें अपनी गोद में सुलाती हूँ।

हमेशा वहीं बनी रहो और मेरी भुजाएँ तुम्हारे चारों ओर सुरक्षा का घेरा हों ताकि कुछ भी अशुभ तुम्हें छू न पाये।

२७. अभीप्सा हमेशा ही सम्भावना का संकेत देती है और अपने कर्म पर निश्चित रूप से डटे रहना लक्ष्य की निश्चयता की ओर ले जाता है।

२८. थकान प्रतिरोध और चिन्ता से आती है; चिन्ता मत करो, अपने-आपको ढीला छोड़ दो, थकान भी चली जायेगी।

२९. जो कठिनाइयाँ आती हैं वे हमारे लिए चुनौतियाँ और परीक्षाएँ होती हैं। और यदि उनका सामना तुम उचित साहस के साथ करो तो तुम पहले से अधिक बलवान् और आध्यात्मिक रूप से शुद्धतर और महत्तर बन कर निकलोगे। —श्रीअरविन्द

३०. प्रत्येक अपना कार्य अच्छे-से-अच्छा करे और परिणाम की चिन्ता शान्तिपूर्वक परम प्रभु के लिए छोड़ दे।

३१. मेरी बच्ची, मेरी सहायता तुम्हारे साथ है और वह कभी चूकेगी नहीं, मेरा प्रेम तुम्हारे साथ है और कभी तुम्हें धोखा नहीं देगा। वास्तव में मैं बुरे दिनों में तुम्हारी मीत हूँ और सत्य की ओर आरोहण करने में तुम्हारी सहयात्री, जहाँ भगवान् तुम्हें सदा-सर्वदा अपनी सर्वसशक्त भुजाओं में उठाये लिये चलेंगे।

—हुता की पुस्तक 'सफेद गुलाब' से संकलित

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

गुह्य ज्ञान

अब मैं काम पर आता हूँ। तुममें से कुछ लोग इंजीनियर होंगे, कुछ डॉक्टर, कुछ व्यापारी। ध्यान को हम इन कामों में कैसे लगा सकते हैं? काम के साथ-ही-साथ हम गुह्य ज्ञान पर भी आते हैं। एक बार कोई व्यक्ति बीमार था और माताजी ने मुझसे कहा कि मैं उसे 'क्ष' के पास ले जाऊँ। उसके देखने-भर से वह ठीक हो जायेगा। मैं उसे ले गया और वह आदमी भला-चंगा हो गया। मैंने अपने-आपसे पूछा कि इसके पीछे क्या सिद्धान्त होगा। उन्होंने इस आदमी पर उसी तरह नज़र डाली जैसे कोई और डालेगा, तो फिर यह आदमी अच्छा कैसे हो गया? मैंने सोचा, हम भी कैसा व्यर्थ जीवन जीते हैं और हमारे लिए कितनी बुद्धिमत्ता, शक्ति,

सुख हमारे भण्डार में भरपूर हैं जिन्हें हम खो रहे हैं। मैंने उन सज्जन से पूछा, जो रूढ़िवादी भारतीय पण्डित थे, जिनका अभी हाल में देहान्त हुआ है, हमारा काफ़ी निकटस्थ सम्बन्ध हो गया था, उन्होंने कहा, यह स्पन्दनों का प्रश्न था। और उन्हें यह चीज़ वर्षों के अभ्यास के बाद प्राप्त हुई थी। स्पन्दनों के साथ रोगी का सम्पर्क कराने से पहले वे यह ध्यान करते थे कि भगवान् हर एक में हैं और भगवान् सर्व-स्वास्थ्य हैं, उनके अन्दर कोई रोग नहीं है इसलिए मनुष्यों में भी कोई रोग नहीं रह सकता। वे यह कह कर मनुष्य पर नज़र डालते थे और उन्हें उसमें कोई रोग नहीं दिखायी देता। तो एकाग्रता स्वास्थ्य-सुधार भी कर सकती है।

माताजी ने स्वास्थ्य-सुधार के बारे में बहुत-सी चीज़ें कही हैं। उन्होंने बतलाया था कि जब कोई रोगी श्रीअरविन्द के पास लाया जाता था तो वे उसकी ओर देखा करते थे, और कभी-कभी श्रीअरविन्द के शरीर से कोई चीज़ निकलती-सी प्रतीत होती थी और जैसे शरीर में से काँटा निकाला जाता है वैसे ही वे रोगी के शरीर से रोग को निकाल देते थे। स्वस्थ करने के बहुत-से तरीक़े होते हैं और हर तरीक़े में तुमको भगवान् की शक्ति का आह्वान करना होता है और तुम परिणाम पा लेते हो।

अगर तुम व्यापारी हो तो भगवान् चाहते तो हैं कि तुम समृद्ध बनो, लेकिन तुमको यह मान न लेना चाहिये कि यह धन तुम्हारा है और तुम धन के दास भी न बनो। अगर तुम धन के दास बन जाओ तो यह ख़तरनाक बात है। तुम्हें यही मानना चाहिये कि धन भगवान् का है।

एक समृद्धि की शक्ति होती है, एक रोग-मुक्ति की शक्ति होती है, अन्य बहुत प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। सरस्वती सुव्यवस्था की देवी हैं। परम्परा के अनुसार वे विद्या की देवी मानी जाती हैं परन्तु तत्त्वतः वे संगठन और काम में पूर्णता की देवी हैं। अगर तुम्हारे अन्दर सरस्वती का अवतरण हो (माताजी कहा करती थीं कि सरस्वती ही प्रायः उनके काम के सामने आया करती हैं) और अगर यह शक्ति तुम्हारे अन्दर विकसित हो तो जब तुम किसी आदमी को देखोगे तो उसके बारे में सब कुछ जान जाओगे, उसकी नियति क्या है, उसे क्या करना चाहिये और वह क्या ज़्यादा अच्छी तरह से कर सकता है। तुम लोगों को उनके ठीक स्थान पर रख सकोगे। इस शक्ति के बिना केवल अस्त-व्यस्तता होती रहेगी, जैसी कि अब है।

हम चीज़ों को हमेशा अपनी दृष्टि से देखते हैं—इससे मुझे क्या हानि या लाभ होगा—हम इसी के अनुसार निश्चय करते हैं। यह कभी ठीक नहीं हो सकता। हम अपने तथा औरों के जीवन में गड़बड़ कर बैठते हैं। पूर्ण जीवन-यापन करने के लिए ठीक तरह का ध्यान एक सशक्त उपाय है। ध्यान के द्वारा अपनी क्षमताओं को विकसित करके हम अपने जीवन को सफल, प्रगतिशील, संघटित बना सकते हैं। औरों की सहायता करने का यह सबसे अच्छा तरीक़ा है।

अब मैं मृत्यु के विषय पर आता हूँ। ध्यान के तरीक़ों में से एक है, अपने सूक्ष्म शरीर को पार्थिव शरीर से अलग कर सकना सीखना। सामान्यतः सूक्ष्म शरीर बहुत तरल होता है और भौतिक शरीर उसे संसार में कार्य करने के लिए भौतिक केन्द्र प्रदान करता है। पहला काम है, अपने सूक्ष्म शरीर को इतना ठोस बना लेना कि वह अपने-आपको जड़ शरीर से अलग कर सके और अपने-आपको बनाये रख सके। जब बुद्ध को सिद्धि प्राप्त हुई थी तो उन्होंने यही कहा था कि वे अपने शरीर के चारों ओर ज्योति का कवच देखते थे। यह सचमुच ऐसा ठोस हो जाता है। अपनी इच्छा-शक्ति का उपयोग करके तुम उसे विकसित कर सकते हो; यह लचीला होता है, तुम उसे बढ़ा सकते और जिधर चाहो उधर दिशा दे सकते हो। भारत के गुरु इसी तरह अपने शिष्यों के चारों ओर अपने निःसरण फैला सकते थे। उनके अन्दर से कोई चीज़ निसृत होती थी और वे उसे शिष्यों के चारों ओर रख देते थे।

अपने भौतिक शरीर में से सूक्ष्म शरीर को बाहर कर सकना जानना ज़रूरी है। उसे शरीर की एक दिशा से या सामान्यतः पीठ की ओर से निकाला जा सकता है। इस ध्यान से मृत्यु का भय दूर हो जाता है। यदि तुम इच्छानुसार सूक्ष्म शरीर को पार्थिव शरीर से अलग कर सको और फिर उसमें वापस आ सको तो मृत्यु के भय को हटाया जा सकता है। यदि तुम औरों की सहायता करना चाहो, उनके साथ सञ्चार-व्यवस्था रखना चाहो तो यह चीज़ सहायक होती है। जो लोग अपना शरीर छोड़ चुके हैं उनके साथ सम्पर्क रखना चाहो तो भी इस ध्यान से सहायता मिल सकती है। यह एक और ही पक्ष है।

(क्रमशः)

—नवजातजी

श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द के वचन

कड़वा सच

तुम कहते हो कि तुम अपने बच्चों का ठीक तरह से पालन-पोषण न कर सके, हालाँकि तुम अच्छे पढ़े-लिखे और सुसंस्कृत आदमी हो लेकिन उनके लिए तुम्हारे पास अतिरिक्त समय नहीं है, और तुम यह भी कहते हो कि तुम्हारी पत्नी के पास समय है लेकिन वह अनपढ़, असंस्कृत, और बेकार है। क्या तुम मुझे बताओगे कि उसकी अवस्था का ज़िम्मेदार कौन है? पच्चीस वर्षों से अधिक वह तुम्हारे साथ रही है। इन पच्चीस वर्षों में तुमने उसे पढ़ाने या उसे अपनी "सभ्यता" देने के लिए क्या किया— बिलकुल कुछ नहीं। यहाँ तक कि यह विचार भी तुम्हारे अन्दर नहीं उठा। तुमने यह कभी न सोचा कि अगर उसकी पढ़ाई के लिए तुम रोज़ एक घण्टा भी देते तो पच्चीस वर्षों में बहुत बड़ा अन्तर आ जाता। तुम्हारे लिए उसका अस्तित्व बस एक मशीन की तरह था जो तुम्हारी सुख-सुविधाओं का ख़याल रखे और तुम्हारे बच्चे पैदा करे। तुम उसे विश्वासपात्र न बना सके, उसकी प्रगति के लिए तुम कुछ न कर सके, लेकिन यहाँ तुम अपने सारे दम्भ के साथ खड़े उस पर अपढ़ और असंस्कृत होने का सारा दोष मढ़ रहे हो!

मैं उसकी सभी त्रुटियों का ज़िम्मेदार तुम्हें मानती हूँ।

—श्रीमाँ

कार्य करते चलो

अपने काम के बारे में केवल तभी सोचो जब वह किया जा रहा हो, न पहले, न पीछे।

जो काम हो चुका उस पर अपने मन को न जाने दो, वह भूतकाल की चीज़ बन गया, उसको फिर से हाथ में लेना शक्ति का अपव्यय है।

जो काम करना है उसके पूर्वानुमान में अपने मन का श्रम न लगाओ। जो शक्ति तुम्हारे अन्दर कार्य कर रही है, वह उसका समय आने पर उसे देख लेगी। मन के ये दोनों अभ्यास भूतकालीन कार्य-पद्धति से सम्बन्ध

रखते हैं जिन्हें रूपान्तरकारी शक्ति त्यागने के लिए दबाव डाल रही है और भौतिक मन उन्हें जारी रखने के लिए आग्रहशील है, यही तुम्हारे तनाव और थकान का कारण है। तुम्हारा मन यदि इतनी-सी बात याद रख सके कि वह तभी काम करे जब उसके काम की ज़रूरत हो तो तनाव कम होकर लुप्त हो जायेगा। निश्चय ही यह मन की उस समय से पहले की अन्तर्वर्ती गतिविधि है जब अतिमानसिक क्रिया भौतिक मन पर अधिकार करके उसमें प्रकाश की सहज क्रिया ले आयेगी।

*

काम में हुई ग़लतियों के बारे में चिन्ता न किया करो। प्रायः ही तुम सोचती हो कि तुमने चीज़ अच्छी नहीं बनायी जब कि वस्तुतः वह बहुत अच्छी बनी होती है, पर उसमें ग़लतियाँ हों भी तो भी दुःखी होने की कोई बात नहीं। चेतना को वर्धित होने दो—केवल भागवत चेतना में ही पूरी पूर्णता है। भगवान् के प्रति तुम जितनी ही अधिक समर्पित होओगी, उतनी ही अधिक पूर्णता की सम्भावना तुममें होगी।

*

ऐसी ग़लतियों को इतना अधिक महत्त्व देने की और उनसे दुःखी होने की ज़रूरत नहीं। मन का स्वभाव है ऐसी ग़लतियाँ कर जाना। केवल उच्चतर चेतना ही उन्हें ठीक कर सकती है—मन तो बड़े लम्बे अभ्यास के बाद किसी विशेष क्षेत्र में निश्चित हो सकता है, फिर भी थोड़ी-सी ग़फ़लत होते ही कुछ अप्रिय घटित हो जाता है। जितना अच्छा कर सकती हो करो, बाक़ी के लिए उच्चतर चेतना को वर्धित होने दो जब तक कि वह भौतिक मन की सभी गतियों को आलोकित न कर दे।

*

कर्म में कुशलता तब आयेगी जब भौतिक मन और शरीर उद्घाटित हो जायेंगे। उसके बारे में अभी से चिन्ता करने की कोई ज़रूरत नहीं। अपना अच्छे-से-अच्छा करो और इसके बारे में चिन्तित न होओ।

*

तुम्हें जो कठिनाई लग रही है उसका कारण यह है कि तुम चीज़ों को लेकर मन से सदा परेशान रहती हो, तुम सोचती हो, "मुझमें या मेरे काम में यह ख़राबी है, वह ख़राबी है," मतलब, "मैं अयोग्य हूँ, मैं बुरी हूँ, मुझसे

कुछ किया न जा सकेगा।" तुम्हारा कढ़ाई का काम, तुम्हारे बनाये 'लैम्प शेड' आदि हमेशा बढ़िया होते हैं, फिर भी तुम सदा यही सोचती रहती हो कि काम अच्छा नहीं हुआ, यह ख़राब बना है, इससे तुम अपने को घपला लेती हो और गड़बड़ा जाती हो। यह ठीक है कि तुमसे जब-तब ग़लतियाँ होती हैं पर तब ज़्यादा होती हैं जब तुम इस प्रकार परेशान होती हो बजाय उस समय के जब तुम सहज रूप से विश्वास के साथ चीज़ें बनाती हो।

यह ज़्यादा अच्छा है, काम की बात हो या साधना की, परेशान हुए बिना आराम से चलती चलो, शक्ति को काम करने दो, अपना भरसक प्रयास करो ताकि शक्ति अच्छी तरह कार्य कर सके; पर इस प्रकार अपने को सताना, क़दम-क़दम पर बेचैन होना और प्रश्न पूछने लगना ठीक नहीं है। जो भी दोष वहाँ हैं वे कहीं अधिक जल्दी दूर हो जायेंगे यदि तुम इस तरह उनकी बीन ही न बजाती रहो, क्योंकि उन पर अत्यधिक ध्यान देने से तुम अपने-आपमें और शक्ति के प्रति—वह तो सारे समय वहाँ उपस्थित होती ही है—खोल सकने की अपनी सामर्थ्य पर विश्वास खो बैठती हो और उसके काम करने के रास्ते में अनावश्यक कठिनाइयाँ खड़ी कर देती हो।

*

कार्य का आध्यात्मिक प्रभाव निश्चय ही आन्तरिक वृत्ति पर निर्भर करता है। काम में अर्पण की भावना ही महत्त्वपूर्ण चीज़ है। इसके साथ ही यदि कोई काम में माताजी का स्मरण कर सके या विशेष एकाग्रता के द्वारा उनकी उपस्थिति को या काम को सहारा दे रही या काम कर रही शक्ति को महसूस कर सके तो यह चीज़ आध्यात्मिक प्रभाव को और भी बढ़ा देती है। परन्तु यदि कोई घटा के, अवसाद या संघर्ष के क्षणों में इन चीज़ों को न कर सके तो भी हो सकता है कि प्रेम और भक्ति, जो कि काम की मूल प्रेरक शक्ति थे, पीछे बने रहें और उसी तरह फिर से उभर आयें जैसे अँधेरे काल के बाद सूर्य निकल आता है। सारी साधना इसी प्रकार की है। इस कारण व्यक्ति को बुरे क्षणों में निरुत्साहित नहीं होना चाहिये, बल्कि यह अनुभव करना चाहिये कि जब मूल भावना वहाँ मौजूद है तो अन्धकार के ये क्षण बस, यात्रा में क्षणिक प्रसंग ही हैं और जब उन्हें पार कर लिया जायेगा ये अधिक बड़ी प्रगति की ओर ले जायेंगे।

—*'श्रीअरविन्द के पत्रों'* से

आध्यात्मिकता, जीवन के व्यवहार में

... हमसे जब-तब पूछा जाता है कि कला और कविता में या राजनीतिक और सामाजिक जीवन में आध्यात्मिकता का भला क्या मतलब हो सकता है—अपने राष्ट्रीय इतिहास की इस अवस्था में आकर किसी भारतीय के मुख से ऐसी बात सुनना काफ़ी अजीब और अज्ञानता का द्योतक प्रतीत होता है—या कैसे कला और कविता अधिक बढ़िया बन जायेंगे... जिसका "आध्यात्मिकता की टंकार" करके वर्णन मैंने अभी हाल में देखा है और भला कैसे इस तत्त्व के आ जाने से सामाजिक या राजनीतिक में से किसी की भी व्यावहारिक समस्याओं को कोई लाभ पहुँच सकता है। यहाँ हम वस्तुतः यूरोपीय विचार को—अब इसे काफ़ी लम्बा समय हो गया है—प्रतिध्वनित होता हुआ देखते हैं कि धर्म और आध्यात्मिकता एक तरफ़ और बौद्धिक क्रिया-कलाप तथा दैनन्दिन व्यावहारिक जीवन दूसरी तरफ़, यानी दो एकदम भिन्न-भिन्न चीज़ें हैं, और प्रत्येक के अनुसरण में पूरी तरह उसकी अपनी ही पृथक् रेखा का और उसके अपने ही पृथक् नियमों का पालन करना होता है। यहाँ हमें यह आशंका आ घेरती है कि इस आदर्श नियम को भारत के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए कहीं हम उसे पारलौकिक जीवन की ओर, सक्रिय और व्यावहारिक जीवन से दूर जाने की ओर संकेत तो नहीं कर रहे या गुह्य और तर्कबुद्धि-शून्य धर्म की, जो सुधार-विरोधी और उन्नति-विरोधी होता है, की बात तो उसके मन में नहीं जमा रहे या हम उसे बौद्धिकता और आधुनिकता के पथ से दूर तो नहीं हटा रहे जब कि इनका अनुसरण करना उसके लिए आवश्यक है यदि उसे आधुनिक जगत् के आघातों के बीच जीवित रहना है और एक सक्षम एवं सुव्यवस्थित राष्ट्र बनना है। इसलिए आवश्यक है कि हम यह स्पष्ट कर दें कि आध्यात्मिक सिद्धान्त पर आधारित पुनर्जागरण से हमारा क्या मतलब है।

परन्तु पहले हम यह बतला दें कि इस आदर्श से हमारा मतलब क्या नहीं है। स्पष्ट ही इसका अर्थ यह नहीं है कि हम पार्थिव जीवन को मिथ्या माया मानेंगे, कोशिश करेंगे कि जितनी जल्दी हो सके हम सबके सब मठवासी संन्यासी बन जायें, सामाजिक जीवन की रचना ऐसी करेंगे कि वह मठ, कन्दरा, पर्वत-शिखर पर वास करने के लिए तैयारी-रूप हो या

उसे ऐसा बनायेंगे कि वह एक स्थितिशील जीवन हो जिसमें कोई महान् उन्नतिशील आदर्श न होंगे, होगा केवल कोई एक उद्देश्य जिसका पृथ्वी से या मानवता की अग्रगति से कोई सम्बन्ध न होगा। भारतीय मन की इस प्रकार की प्रवृत्ति किसी समय रही होगी, पर कभी भी वह सर्वांगपूर्ण न थी। न ही आध्यात्मिकता का यह मतलब है कि राष्ट्र के सब प्रकार के लोगों को, किसी विशेष धर्म के सीमित सिद्धान्तों, रीति-रिवाजों और विश्वासों के अनुसार गढ़ा जाये, जैसा कि पुराने सम्प्रदायों ने कई बार प्रयास किया, यह एक ऐसा विचार है जो अब भी कई मनों में पुराने मानसिक अभ्यास और संस्कार के वश बना हुआ है। स्पष्ट है कि ऐसा प्रयास असम्भव होगा। यदि ऐसा वाञ्छनीय हो फिर भी होगा यह असम्भव क्योंकि यह एक ऐसा देश है जो कितने ही धार्मिक मतवादों से भरा है, जो सामान्य रूप से तीन एकदम असदृश धर्मों—हिन्दूधर्म, इस्लाम और ईसाइयत को आश्रय देता है, उनकी तो बात ही छोड़ दो जो इनमें से प्रत्येक में से जन्मे बहुतेरे विशिष्ट पन्थ हैं। अतः, ऐसा प्रयास असम्भव होगा। और फिर आध्यात्मिकता किसी भी विशेष धर्म से बहुत अधिक व्यापक है; इतनी व्यापक कि इस आध्यात्मिकता में सभी धर्म समा जाते हैं और एक बार अगर हम इसे समझ जायें तो भविष्य में मानव के सनातन, दिव्य, महत्तर 'स्व' के, एकता के स्रोत के प्रति जो खोज है उसे समझना प्रारम्भ कर देंगे...।

न ही हमारा यह मतलब है कि हम किसी चीज़ को अपने क्षेत्र से बाहर कर देंगे। किसी भी चीज़ को, वह चाहे कुछ भी क्यों न हो, हम अपने क्षेत्र से बाहर नहीं करेंगे, मानव जीवन के किसी महान् उद्देश्य को, आधुनिक जगत् की किसी भी महान् समस्या को, मानव क्रिया-कलाप के किसी भी रूप को, किसी भी सामान्य या अन्तर्निहित प्रवृत्ति को हम अपने क्षेत्र से बाहर नहीं करेंगे न ही उन्नति, विस्तार, वृद्धिशील पौरुष के लिए और हर्ष, प्रकाश, शक्ति, पूर्णता के लिए मानव आत्मा जिन विशिष्ट साधनों की कामना करती है उन्हें अपने क्षेत्र से बाहर करेंगे। आत्मा—बिना मन के आत्मा, बिना शरीर के आत्मा, यह मनुष्य का सच्चा स्वरूप नहीं है। इसलिए मानव-आध्यात्मिकता मन-जीवन-शरीर को तुच्छ या हीन दरजे का नहीं समझेगी, इन्हें ऊँचा दरजा और बड़ा महत्त्व देगी, इसीलिए कि ये मानव के आत्मिक जीवन की सही अवस्था और साधन हैं। प्राचीन

भारतीय संस्कृति मन-जीवन-शरीर के स्वास्थ्य, वृद्धि और बल को उतना ही महत्त्व देती थी जितना कि प्राचीन यूनान या आधुनिक वैज्ञानिक विचार देता है, यद्यपि उसका उद्देश्य भिन्न था और प्रयोजन अधिक महान्। इसलिए प्रत्येक चीज़ को, जो इन चीज़ों की स्वस्थ परिपूर्णता के लिए उपयोगी थी या उनसे सम्बन्धित थी, उस आध्यात्मिकता ने उसके खिलाव के लिए पूरा अवसर प्रदान किया था, बुद्धि के क्रिया-कलाप को, विज्ञान और दर्शन को, सौन्दर्यात्मक सत्ता की सन्तुष्टियों को, बड़ी-छोटी सब प्रकार की अनेकविध कलाओं को, शारीरिक स्वास्थ्य और बल-पराक्रम को, भौतिक और आर्थिक समृद्धि को, जाति के सुख-चैन और वैभव को,—निर्धनता कभी भी भारत का राष्ट्रीय आदर्श नहीं रही जैसा कि हममें से कुछ मानते हैं, न ही नंगे या फटेहाल रहना आध्यात्मिकता का आवश्यक परिवेश ही है—उसके सैनिक, राजनीतिक और सामाजिक शक्ति-सामर्थ्य एवं क्षमता को अवसर प्रदान किया था। अवश्य ही नया भारत उसी उद्देश्य को नये तरीक़ों से, नये व्यापक विचारों की सुस्पष्ट प्रवृत्ति का अनुसरण करते हुए करेगा और ऐसे साधनों के द्वारा करेगा जो अधिक जटिल परिस्थितियों के अनुकूल होंगे, परन्तु उसके प्रयास और कार्य का क्षेत्र और उसके मन की नमनीयता और बहुविधता पुरानी प्रवृत्ति की अपेक्षा कम नहीं, बल्कि अधिक ही होगी। आध्यात्मिकता आवश्यक रूप से सभी पार्थिव चीज़ों का बहिष्कार करे ऐसी बात नहीं है, वह सर्व-समावेशी हो सकती है और अपनी परिपूर्णता की अवस्था में पहुँच कर उसे सर्व-समावेशी बन ही जाना चाहिये।

फिर भी जीवन के बारे में आध्यात्मिक दृष्टि और शुद्ध रूप से भौतिक और मानसिक दृष्टि के बीच बहुत बड़ा अन्तर है। आध्यात्मिक दृष्टि मानती है कि मन-प्राण-शरीर मनुष्य के साधन हैं, उद्देश्य नहीं; यहाँ तक कि वे उसके अन्तिम और उच्चतम साधन भी नहीं हैं। यह तो उन्हें मनुष्य का बाह्य साधन-रूप स्व मानती है, उसकी समग्र सत्ता नहीं। यह सान्त वस्तुओं के पीछे अनन्त को देखती है और सान्त के मूल्यों को उच्चतर अनन्त मूल्यों के द्वारा जाँचती है। सान्त चीज़ें अनन्त का ही अपूर्ण रूपान्तरण हैं और उसी की ओर, अपनी ही अधिक सच्ची अभिव्यक्ति की ओर, पहुँचने की सदा कोशिश में हैं। यह प्रतीयमान को देखने की अपेक्षा एक बृहत्तर वास्तविकता को देखती है, उसे मनुष्य और जगत् के पीछे ही नहीं, बल्कि

मनुष्य और जगत् के अन्दर भी देखती है और मानती है कि यह मनुष्यस्थ आत्मा, स्व, भागवत तत्त्व उसमें ऐसी चीज़ है जो सर्वाधिक महत्त्व की है और इसे उसकी दूसरी चीज़ों को सामने लाने और अभिव्यक्त करने की कोशिश करनी चाहिये, और वह मानती है कि जगत् में विद्यमान यह आत्मा, स्व, भागवत उपस्थिति ऐसी चीज़ है जिसे मनुष्य को सब प्रतीतियों के पीछे देखने और पहचानने की और अपने विचार और जीवन में उसके साथ एक होने की सदा कोशिश करनी चाहिये तथा उसी के अन्दर अपने साथियों के साथ एकता प्राप्त करनी चाहिये। यह आवश्यक रूप से, वस्तुओं के बारे में हमारी सामान्य दृष्टि को बदल देगी, यहाँ तक कि मानव जीवन के सभी उद्देश्यों को जारी रखते हुए भी यह उन्हें एक भिन्न अर्थ और भिन्न दिशा-निर्देश देगी।

हमारा उद्देश्य है शरीर का स्वास्थ्य और बल-पराक्रम, पर किस प्रयोजन के लिए? इसका सामान्य उत्तर होगा, अपने ही लिए, क्योंकि यह पाने-योग्य है या फिर इसलिए कि हम लम्बा जीवन पा सकें और बौद्धिक, प्राणिक, भावनात्मक सन्तुष्टि का दृढ़ आधार पा सकें। हाँ, एक तरह से अपने ही लिए, पर इस अर्थ में कि भौतिक भी आत्मा की ही अभिव्यक्ति है और इसकी पूर्णता पाने-योग्य है; यह समस्त जीवन के धर्म का भाग है, पर इससे भी अधिक इसलिए कि यह उस उच्चतर क्रिया-कलाप का आधार है जिसका उद्देश्य है मनुष्यस्थ भगवान् की खोज और अभिव्यक्ति। *शरीरं खलु धर्मसाधनम्,* यह संस्कृत की पुरानी उक्ति है कि शरीर भी धर्म की, हमारी सत्ता के भागवत विधान की परिपूर्ति के लिए हमारा साधन है। अपने मानसिक, भावनात्मक, सौन्दर्यात्मक भागों को भी हमें उन्नत करना है, यह सर्व-साधारण दृष्टि है जिससे वे महत्तर सन्तुष्टि पा सकें या क्योंकि वह मानव की अधिक परिष्कृत प्रकृति है, क्योंकि इस तरह वह अपने-आपको अधिक सक्रिय, सजीव और परिपूर्ण एवं परितृप्त अनुभव करता है। यह तो है, पर केवल यही नहीं, बल्कि इसलिए क्योंकि ये चीज़ें भी आत्मा की अभिव्यक्तियाँ हैं, ऐसी चीज़ें जो उसमें अपने दिव्य मूल्यों को खोज रही हैं और उनकी वृद्धि, सूक्ष्मता, नमनीयता, शक्ति, तीव्रता के द्वारा वह जगत् में विद्यमान दिव्य वास्तविकता के अधिक निकट पहुँच सकता है, बहुविध रूप में उसे अपनी पकड़ में ला सकता है और अन्त में अपने सारे जीवन को

उसके साथ एक कर सकता तथा उसकी अनुरूपता में, उसके सादृश्य में ढल सकता है। सर्व-साधारण की दृष्टि में नैतिकता है सुनियन्त्रित वैयक्तिक और सामाजिक आचार-व्यवहार जिससे कि समाज बना रहता है और अपने संगी-साथियों के साथ व्यवहार अधिक अच्छा, अधिक युक्तियुक्त, अधिक भद्र, सहानुभूतिपूर्ण एवं अधिक आत्म-संयत होता है। परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से नीति-शास्त्र इससे बहुत अधिक है, यह हमारे कर्म में, विशेषतः उससे कहीं अधिक हमारे चरित्र में, अपनी अन्तःस्थ दिव्य सत्ता के परिस्फुटित होने का एक साधन है, भागवत प्रकृति में परिवर्धित होने का एक पग है।

ऐसा ही हमारे सभी उद्देश्यों और क्रिया-कलापों के साथ है, आध्यात्मिकता उन सभी को अपना लेती है और उन्हें अधिक महान्, अधिक दिव्य, अधिक अन्तरंग अर्थ प्रदान करती है। पश्चिम की दृष्टि में दर्शन है, बुद्धि के प्रकाश में जीवन के प्राथमिक सत्यों की निष्पक्ष खोज; इस तक पहुँचा जाता है या तो विज्ञान द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के निरीक्षण के द्वारा या बौद्धिक विचारों की सावधानतापूर्वक तर्कसंगत समीक्षा के द्वारा, या दोनों पद्धतियों को मिला-जुला कर चलने के द्वारा। परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से जीवन के सत्य की प्राप्ति होती है अन्तर्भास और आन्तरिक अनुभूति के द्वारा, केवल बुद्धि और वैज्ञानिक निरीक्षण के द्वारा नहीं। दर्शन का काम है, ज्ञान-प्राप्ति के विभिन्न साधनों के द्वारा प्राप्त तथ्यों को व्यवस्थित करना, कोई एक भी छूटने न पाये, और उन्हें एकमेव सत्य के, परमोच्च और वैश्व वास्तविकता के साथ समन्वयात्मक सम्बन्ध में रखना। अन्ततः उसका वास्तविक मूल्य आध्यात्मिक अनुभूति के लिए आधार तैयार करने में और मानव सत्ता को अपनी दिव्य आत्मा और दिव्य प्रकृति में परिवर्धित करने में है। विज्ञान अपने-आपमें बस, जगत् का ज्ञान बन जाता है जो विश्वात्मा पर और चीज़ों के साथ बरतने के उसके तरीक़ों पर कुछ थोड़ा-सा अधिक प्रकाश डालता है। वह विज्ञान अपने-आपको भौतिक ज्ञान और उसके क्रियात्मक फलों तक सीमित नहीं रखेगा और जड़-तत्त्व एवं जड़-ऊर्जा को प्रारम्भ-बिन्दु मानने वाला जो विचार है, उस विचार पर आधारित जीवन, मनुष्य और मन के ज्ञान तक भी सीमित नहीं रखेगा। आध्यात्मिक संस्कृति खोज के नये क्षेत्रों के लिए स्थान रखेगी, नये और पुराने भौतिक विज्ञानों और परिणामों के लिए स्थान रखेगी। ये विज्ञान आत्मा को पहला

सत्य मान कर चलेंगे और मन की शक्ति से तथा मन से भी जो बड़ा है उसकी शक्ति से जीवन और जड़-तत्त्व पर क्रिया करेंगे। कला और कविता का प्रारम्भिक उद्देश्य है मनुष्य और प्रकृति के ऐसे चित्रों को बनाना जो सौन्दर्य-भावना को सन्तुष्ट करें और जीवन के बारे में बुद्धि के विचारों और कल्पना की क्रीड़ा को कलात्मक रूप में प्रस्तुत करें; परन्तु आध्यात्मिक संस्कृति में उनका उद्देश्य होगा मनुष्य और प्रकृति में छिपी महत्तर चीज़ों को उद्घाटित करना और गभीरतम आध्यात्मिक और वैश्व सौन्दर्य को उजागर करना। राजनीति, समाज, अर्थ-व्यवस्था—ये मानव जीवन के प्रथम रूपों में ऐसी व्यवस्था हैं कि मनुष्य सामूहिक रूप में जीवन व्यतीत कर सके, शारीरिक, प्राणिक, मानसिक क्षमता के अनुसार उपार्जन, कामना-तुष्टि, उपभोग और प्रगति कर सके, परन्तु आध्यात्मिक उद्देश्य उन्हें इससे अधिक अच्छा बना देगा। पहले तो जीवन का ऐसा व्यवस्थित चौखटा बनाना होगा जिसमें रहते हुए मनुष्य अपने वास्तविक स्व और दिव्य तत्त्व को खोज सके और उसमें वर्धित हो सके; दूसरे, सत्ता के दिव्य विधान को, धर्म को, जीवन में उत्तरोत्तर चरितार्थ करना होगा; तीसरे, मानव की जो दिव्य प्रकृति है, जिसमें मानवजाति विकसित होने का प्रयास कर रही है, उसकी ओर, अर्थात् प्रकाश, शक्ति, शान्ति, एकता, सामञ्जस्य की ओर सामूहिक अग्रगति करनी होगी। अपनी समस्त सम्भाव्यताओं के साथ यही है वह जिसे हमें करना है, इससे अधिक कुछ नहीं, पर इससे कम भी कुछ नहीं। जब हम कहते हैं कि आध्यात्मिक संस्कृति तथा आध्यात्मिकता को हमें जीवन में उतारना है तो इससे हमारा यही मतलब होता है।

श्रीअरविन्द

... बाह्य कर्म जब कि ठीक वह-का-वही हो फिर भी एक साधारण आदमी के और योगी के कर्म में आन्तरिक भेद बहुत बड़ा होता है—भेद होता है सत्ता की स्थिति में, भेद होता है शक्ति और योग्यता में, भेद होता है संकल्प और स्वभाव में।

श्रीअरविन्द

श्रीमाँ के साथ रवीन्द्रजी का पत्र-व्यवहार

(रवीन्द्रजी ने गुरुकुल काँगड़ी से शिक्षा समाप्त करके श्रीअरविन्द के बड़े गुरुकुल में सन् १९३८ में २१ वर्ष की अवस्था में प्रवेश पाया था। २००१ में अपनी मृत्युपर्यन्त वे यहीं के अन्तेवासी रहे।)

प.ले. का अर्थ है, पत्र-लेखक—सं.

प.ले. हिन्दी-अध्यापक भी था। उसने माताजी को बताया कि उसके विद्यार्थी हिन्दी में रस नहीं लेते इसलिए वह हिन्दी पढ़ाना छोड़ देना चाहता है। साथ ही उसने यह भी पूछा कि क्या माताजी भारतीय भाषाओं को महत्त्व देती हैं?

निःसंकोच होकर पढ़ाना जारी रखो।

मुझे भारतीय भाषाओं के लिए बहुत गहरा मान है और जब समय मिल जाये तो संस्कृत का अध्ययन किया करती हूँ।

अमृत[१] कहता है कि उसकी तमिल-कक्षा की हालत तुम्हारी कक्षा से भी ख़राब है। लेकिन वह कहता है कि अगर उसके सभी विद्यार्थी आना बन्द कर दें तो भी वह पढ़ाना जारी रखेगा... वह अपने-आपको पढ़ायेगा!

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

३० सितम्बर १९५९

विद्यालय के हिन्दी-विभाग में छुट्टियों के बाद की सभा में भाषणों का विषय था 'छुट्टियाँ'। विद्यार्थियों ने आग्रह किया कि प.ले. (जो उनका अध्यापक भी था) भी इस विषय पर कुछ बोले। उसने माताजी से कहा, 'मैं छुट्टियों के बारे में सामान्य बकवास नहीं करना चाहता। कृपया बतायें कि मुझे क्या कहना चाहिये।' माताजी ने यह लिख कर उसे थमा दिया और कहा कि इसके आधार पर एक कहानी लिख डालो। बात शायद १९६० के आस-पास की है।

[१] अमृत सबसे पुराने आश्रमवासियों में से थे। वे तमिल-अध्यापन का काम भी करते थे। वे मज़ाक करने में बहुत पटु थे।

हॉलीडेज़ या छुट्टियाँ[१]

हम 'होली डेज़' कह सकते हैं? इनके दो प्रकार होते हैं। एक मान्यता के अनुसार भगवान् ने छह दिन (या छह युग) तक काम करके यह सृष्टि बनायी और सातवें दिन विश्राम, एकाग्रता और ध्यान-चिन्तन के लिए काम बन्द रखा। इसे भगवान् का दिन कहा जा सकता है।

दूसरे, मनुष्य, भगवान् के बनाये हुए जीव, छह दिन तक अहंकारमय उद्देश्यों के लिए और व्यक्तिगत हितों के लिए काम करते हैं और सातवें दिन आराम करने और अपने अन्दर और ऊपर देखने के लिए समय निकालने के लिए अपनी सत्ता और चेतना के स्रोत का ध्यान करने और उसमें गोता लगा कर नयी शक्ति प्राप्त करने के लिए काम बन्द रखते हैं।

हमें शब्द को आधुनिक अर्थ में समझने के तरीक़े के बारे में कुछ कहने की शायद ही ज़रूरत हो, अर्थात्, अपने मनोविनोद के व्यर्थ प्रयास के लिए हर सम्भव रूप से समय नष्ट करना।

अक्तूबर १९५९

एक आश्रमवासी काम से बहुत कतराता था, माताजी ने उसके नाम एक पत्र भेजा।

परिश्रम के बिना जीवन नहीं होता। अगर तुम परिश्रम से बचना चाहो तो तुम्हें अस्तित्व से बाहर निकलना होगा। उसे प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है निर्वाण—और वह उपाय, उसका अनुसरण, सभी परिश्रमों में सबसे कठिन है।

६ नवम्बर १९६०

एक आश्रमवासी बहुत कम काम करता था और नये कार्यकर्ताओं को सलाह देता था कि वे मज़दूरों की तरह मेहनत न करें। माताजी ने उसे सन्देश भेजा।

[१] अंग्रज़ी में छुट्टी को हॉलीडेज़ कहते हैं और 'होली डे' हुआ पवित्र दिन।

जब स्वयं तुम अपनी ज़िम्मेदारी के पूरे भाव के साथ अपना काम नहीं करते तो इसका कोई कारण नहीं कि तुम नये व्यक्तियों को भी अपनी तरह काम करने के लिए उकसाओ।

१९६०

प.ले. का काम आश्रम में आये नये लोगों को काम देना भी था। वह यह देख कर कुछ क्षुब्ध हो गया कि उसे सूचित किये बग़ैर किसी ने नवागन्तुक को कार्य दे दिया। श्रीमाँ से पूछने पर उन्होंने कहा :

मैं बस इतना कह सकती हूँ कि जब कोई व्यक्ति मुझसे कहलवाता या कहलवाते हैं कि वे यहाँ ठहरना या आश्रम में प्रवेश पाना चाहते हैं तो मैं बिना अपवाद यही उत्तर देती हूँ कि उसे या उन्हें 'र'[१] के पास भेज दो और अगर मैं स्वयं बात कर रही होऊँ तो कहती हूँ कि उससे जाकर मिलो। यह चीज़ किसी और रूप में कैसे बदल जाती है और तुम्हें ख़बर नहीं की जाती यह मैं नहीं कह सकती—यह मानव स्वभाव की पहेलियों में से एक है, और मुझे विश्वास है कि ऐसी बहुत-सी बातें होती रहती हैं जिनके बारे में मुझे कोई ख़बर नहीं होती।

लेकिन यह क्षुब्ध होने का कोई कारण नहीं है। केवल स्थिर और शान्त बने रहो और मानव स्वभाव तुम पर जो सीमाएँ आरोपित करता है उनमें रहते हुए अपना अच्छे-से-अच्छा करो।

आख़िर पूरी-की-पूरी, सारी ज़िम्मेदारी प्रभु की है, और किसी की नहीं, इसलिए चिन्ता की कोई बात नहीं है।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२६ फ़रवरी १९६१

माताजी,

हमने घोषणा की है कि प्रस्तावित अदिति पुस्तकमाला में लगभग सौ पृष्ठों की पहली पुस्तक होगी "सफेद गुलाब" (White Roses)। क्या यह ज़रूरी है कि उसमें हुता की भूमिका को भी रखा जाये?

[१] स्वयं पत्र-लेखक।

हाँ, मैंने ये पत्र हुता को लिखे थे, औरों को नहीं। हर एक से जो बात कही जाती है अलग ढंग से कही जाती है—सबको मिला देने से उलझन पैदा होती है।

१९६१

माताजी,

अनु ने हिन्दी में 'राजकुमार' नामक जो नाटक लिखा है उसका संक्षिप्त रूप, उसी के शब्दों में, आपके पास भेज रहा हूँ। आप जब देख सकें, इसे देख जाइये। मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि इसमें कोई सुधार बतलायें ताकि नाटक का स्तर ऊँचा हो जाये और इसमें भाग लेने वालों की चेतना की सहायता करे। मुझे अन्त की तरफ़ कुछ परिवर्तन की ज़रूरत मालूम होती है, लेकिन समझ में नहीं आता कि क्या बदला जाये।

(इस नाटक में अन्धकार और प्रकाश की शक्तियों के युद्ध की कहानी है। अनुबेन के नाटक के पहले रूप में प्रकाश की शक्ति की प्रार्थना पर दिव्य जननी प्रकट होती हैं और अन्धकार की शक्ति को नष्ट कर देती हैं)

क्या नाटक की परिस्थितियाँ *ऐतिहासिक* हैं या उनमें हेर-फेर किया जा सकता है? ज़्यादा अच्छी बात तो यह होगी कि विरोधी शक्तियों का यन्त्र, विष देते समय राजकुमार के प्रेम के कारण बदल जाये, अपने अपराध को स्वीकार कर ले और क्षमा पा जाये।

यह पुराना विचार कि शक्ति को *प्रभावकारी* बनाने के लिए किसी बड़े संकट की ज़रूरत होती है, एक सीमाबन्धन है जिस पर विजय पाना ज़रूरी है।

हाँ, अगर यह *ऐतिहासिक* घटना है तब तो उसके रूप को ऐसा ही रखना होगा और उच्चतर सत्य को भाषण द्वारा व्यक्त करना होगा।

२५ फ़रवरी १९६२

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. ३०९-१५

कैसे पहुँच पाऊँगा?

आकाश देखता हूँ
उसकी ऊँचाई, उसका विस्तार देखता हूँ
सिहर तो उठता हूँ...

सोचता हूँ,
कैसे पहुँच पाऊँगा वहाँ तक
कैसे छू पाऊँगा उसकी ऊँचाई?
मेरे पंख तो बहुत छोटे हैं
थक भी जाते हैं शीघ्र ही।

फिर सोचता हूँ,
जितनी भी शक्ति है, मेरे इन पंखों में
जैसी भी, उसने ही तो दी है;
और उसका ही है यह असीम आकाश
कहीं न कहीं तक
पहुँच ही पाऊँगा
छू ही पाऊँगा
उसकी विशालता के किसी न किसी छोर को।

'*आलाप*' पुस्तक से उद्धृत अंश —स्व. श्री विश्वनाथ

अनमोल भेंट

प्रभु का नाम ही है लीलामय, और कितने भाग्यवान् हैं हम मनुष्य कि उन्होंने इस धरती को अपनी लीला का रंगमञ्च चुना। युग-युगान्तर से उनकी अनुकम्पाभरी कथाओं की साक्षी रही है यह भारतभूमि। चक्रजी की लेखनी से निकली ऐसी ही एक कथा का रसास्वादन कर आनन्द-विभोर हो उठें—

देवर्षि नारद ने एक दिन सत्यभामाजी को स्मरण कराया—"देवि! उस दिन आपने कहा था कि श्रीद्वारिकाधीश इतने आपके हैं कि आप उनका दान भी कर सकती हैं, क्या यह बात सच है?"

सत्यभामाजी ने मुस्कुरा कर कहा—"देवर्षि! मैं आज ही निर्णय कर लूँगी।" नारदजी के जाने के बाद सत्यभामा ने अपने आराध्य से पूछा—"आप कहते तो हैं कि मैं तुम्हारा ही हूँ किन्तु..."

"इसमें किन्तु परन्तु क्या देवि?" श्रीकृष्ण ने हँस कर कहा।

"मैं आपका दान कर दूँ, स्वीकार्य है आपको?"

"करके देख लो," द्वारिकाधीश हँस पड़े, "कल्पतरु भी तो तुमने इसी अभिप्राय से मँगवाया है।"

लीला में लीला!! प्रभु का दान होगा? सत्यभामाजी ने श्रीकृष्ण की सभी रानियों से स्वयं जा-जाकर अनुमति ली। अन्य सभी गुरुजनों को आमन्त्रित किया। और अगले दिन जब देवर्षि पधारे तो महारानी ने उनका विधिवत् पूजन-अर्चन कर उनको भोजन करवाया। फिर श्रीकृष्ण के कण्ठ में पुष्पमाला डाल उन्हें कल्पवृक्ष से बाँध दिया। ऐसा करते ही वह कल्पवृक्ष इतना छोटा हो गया कि यह कहना ज़्यादा ठीक होगा कि उस नन्हें से पारिजात के पौधे को श्रीकृष्ण के चरणों में बाँध दिया और हाथ में जल लेकर सम्पूर्ण संकल्प पढ़ कर "*इमं स्वपतिं नारदाय ब्रह्मपुत्राय प्रददे*" कहते हुए उन्होंने पति का दान कर दिया। हज़ारों गउएँ तथा विपुल स्वर्ण-राशि भी देवर्षि को दी गयीं।

इस लीला के समय देवतागण भी स्वर्ग से पुष्पवृष्टि कर रहे थे। जयध्वनि, शंखनाद तथा अन्य मंगल वाद्यों से दिग्-दिगन्त मुखरित हो उठा। सम्पूर्ण विधि के समाप्त होने पर देवर्षि आसन से उठे और वीणा उठा कर श्रीकृष्ण से बोले—"केशव, महारानी सत्यभामा ने आपको मुझे दान दे दिया

है, अब आप मेरे हो गये, अब आपको मेरी आज्ञा का पालन करना होगा।"

नतमस्तक श्रीकृष्ण उठे और देवर्षि के पीछे-पीछे चल पड़े।

यह सारा नाटक था, कम-से-कम देवी सत्यभामा ने तो यही सोचा था, अतः, जब श्रीकृष्ण चलने लगे तो वे मुस्कुरा कर बोलीं—"देवर्षि, अब आप हम पर कृपा कर प्रभु को हमें वापस कर दें, इनके बदले में जितना धन-धेनु आप चाहें हम सहर्ष आपको समर्पित करेंगे।"

नारदजी ने देवी सत्यभामा के सामने हाथ जोड़ दिये, कहा—"देवि! मैं ठहरा अनासक्त, धन-धान्य लेकर क्या करूँगा भला? आपने तो स्वयं देख लिया कि श्रीकृष्ण का दान करते समय जो विपुल धन-राशि आपने मुझे प्रदान की थी वह भी मैंने यहीं बाँट दी। प्रभु के साथ-साथ आपने मुझे जो पारिजाततरु दान में दिया उसे मैं आपको निस्संकोच वापस कर देता हूँ, उससे आपको सृष्टि के सभी वैभव प्राप्त हो जायेंगे, लेकिन जो जन्म-जन्मों की साधना से भी नहीं मिलते उन श्रीकृष्ण को पाकर उन्हें भला मैं कैसे लौटा सकता हूँ?"

अब तो सत्यभामाजी आकुल-व्याकुल हो उठीं, खेल-खेल में किया गया नाटक यह रूप ले लेगा ऐसी तो किसी ने कल्पना तक न की थी!!

व्यग्र होकर सत्यभामाजी बोल उठीं—"देवर्षि! आपने ही तो कहा था कि भगवती उमा ने भी अपने स्वामी को इसी प्रकार आपको दान में दिया था और फिर आपने उन्हें लौटा भी दिया था।"

"यह बात बिलकुल सच है महारानी, महर्षि कश्यप को भी इसी प्रकार देवमाता अदिति ने मुझे दान में दिया था, मैंने उन्हें भी लौटा दिया, लेकिन आपने यहाँ एक तथ्य पर सम्भवतः ध्यान नहीं दिया।" देवर्षि बोले।

"कौन-से तथ्य पर?" सत्यभामाजी पलट कर पूछ बैठीं।

"जब आपने कल्पतरु के साथ प्रभु को दान में दिया तो उस मन्दारतरु का आकार कितना छोटा हो गया था। अर्थात् स्वयं पारिजात, जो सम्पूर्ण त्रिलोक प्रदान कर सकता है वह भी उन देवाधिदेव कृष्ण के सम्मुख कितना नगण्य है, और अब आप उन्हीं सर्वेश्वर को मुझसे वापस माँग रही हैं!!"

"अब क्या होगा", यही प्रश्न वहाँ उपस्थित सभी लोगों के हृदयों को मथ रहा था।

सभा का वातावरण गम्भीर हो उठा। क्रन्दन का मौन स्वर उस विशाल

मण्डप के खम्भों से टकराने लगा, एक ऐसी कातरता का वितान उस सभा-भवन में छा गया कि देवर्षि भी गभीर सोच में पड़ गये। कुछ पलों के मौन के बाद उनकी वाणी गूँज उठी—"देवि! आपकी कातरता मुझे भी विह्वल बनाये दे रही है। मैंने एक मार्ग सोचा है, आप इन सर्वेश्वर को तराज़ू के एक पलड़े में बिठा कर इनके भार का द्रव्य मुझे दे दें। तब ये फिर से आपके हो जायेंगे।"

देवर्षि के इस प्रस्ताव को सुन कर सत्यभामाजी की बाँछें खिल गयीं। वे यही तो चाह रही थीं, कृतज्ञता के आँसू टपक गये। कुछ देर पहले निराशा की मूर्ति बनी सभी रानियों के हृदयों में उत्साह का ऐसा सागर उमड़ा कि पलक झपकते न झपकते राजभवन में धन-धान्य, हीरे-जवाहरात का अम्बार लग गया। आख़िर श्रीकृष्णचन्द्र को तोलना था।

लेकिन यह क्या! वह सारा सोना, वे सारे मणि-माणिक्य उन प्रभु के आगे मानों अपना सारा भार, अपनी सारी चमक खो बैठे। श्रीकृष्ण का पलड़ा भूमि से तिल-मात्र भी न हिला। अब दूसरे पलड़े में और कुछ रखने का स्थान तक न था, देवर्षि बोल उठे—"देवि सत्यभामा, अब इस पलड़े में भौतिक स्थान नहीं है, लेकिन आप सम्पूर्ण मन से जिस चीज़ का संकल्प करेंगी वह वस्तु अपना भार इस पलड़े पर दर्शायेगी।" सत्यभामा संकल्प करती गयीं, द्वारिका का सम्पूर्ण राज्यकोष, यहाँ तक कि सम्पूर्ण द्वारिका भी संकल्प में दे डाली, वहाँ उपस्थित सभी ने अपने समस्त भौतिक द्रव्य का संकल्प कर सब कुछ दान में दे दिया, लेकिन श्रीकृष्ण भगवान् का पलड़ा ज्यों का त्यों ज़मीन पर टिका रहा।

चारों तरफ़ फिर से दुःख के बादल घिर आये। "अब क्या होगा" यही एकमात्र प्रश्न पुनः वहाँ उपस्थित प्रत्येक नर-नारी की आँखों में तैरने लगा। महारानी सत्यभामाजी पर तो दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। उन्होंने जाकर महारानी रुक्मिणी के पैर पकड़ लिये और बोलीं—"बहन, ऋषि-मुनि कहते हैं कि तुम साक्षात् सिन्धुसुता हो, अब तुम्हीं कोई उपाय सुझाओ।"

रुक्मिणीजी ने पट्टमहिषी को सान्त्वना देकर कहा—"बहन, मैं तो अपने आराधक की चरणसेविका हूँ, स्वयं भी पलड़े में जा बैठूँ फिर भी कुछ न होगा। हाँ, एक उपाय अवश्य है, तुम व्रज के शिविर से किसी को भी बुला लो, वहाँ कोई भी इनका मूल्य देने में समर्थ होगा।"

देवी रुक्मिणी की बात सुनते न सुनते महारानी सत्यभामा पैदल ही दौड़ती चली गयीं और जाकर श्रीराधा के चरण पकड़ लिये उन्होंने। वाणी तो साथ न दे रही थी, आँसुओं ने सब कह डाला।

श्रीराधाजी ने सत्यभामा को अंक में भर लिया और उनकी विह्लता देख कर जैसी थीं वैसी ही उठ कर उनके संग हो लीं। वे वृषभानुनन्दिनी जब चल रही थीं तो सचमुच ऐसा लग रहा था मानों नारी का समस्त गौरव साक्षात् सौन्दर्य की मूर्ति में ढला हुआ गतिशील हो उठा है। राधाजी ने श्रीकृष्ण को नमन कर उसी महिमान्वित गौरव के साथ दूसरे पलड़े में रखे समस्त द्रव्य को हटाने का आदेश दिया और जब वह पलड़ा बिलकुल ख़ाली हो गया तो उन्होंने अपने कण्ठ में पड़ी वनमाला से एक तुलसीदल तोड़ कर बहुत सावधानी से पलड़े पर रख दिया।

सबकी आँखें यह देख कर आश्चर्य से फटी की फटी रह गयीं कि वह पलड़ा तुरन्त भूमि से जा लगा और जिसमें भगवान् वासुदेव बैठे थे वह ऐसे ऊपर उठ गया मानों उसमें कुछ रखा ही न हो!! सारी धरती ख़ुशी से डोल उठी। देवर्षि ने तुरन्त श्रीकृष्ण के कण्ठ में पड़ी माला निकाल कर सत्यभामाजी से कहा—"लीजिये देवि, केशव आपके हैं, सदैव आपके रहेंगे।"

केशव के तुला से उतरते ही देवर्षि नारद ने दूसरे पलड़े से वह तुलसी दल इतनी शीघ्रता से उठा कर अपनी जटा में छिपा लिया मानों उन्हें भय हो कि कहीं कोई उनसे वह छीन न ले। और फिर देवर्षि आनन्द-विभोर हो ऐसे झूमे कि धरती-आकाश सब कुछ उनके साथ नाच उठा।

श्रीकृष्ण के दान की यह लीला तो समाप्त हो गयी, लेकिन सत्यभामाजी के हृदय में एक प्रश्न बना रहा। उस दिन तो देवर्षि से उसके समाधान का अवसर न मिला क्योंकि वे ऐसे आनन्दोन्मत्त थे कि कोई भौतिक स्वर उनके कानों को छू तक न रहा था, लेकिन कुछ दिनों के बाद जब फिर से नारदजी का आगमन हुआ तो सत्यभामाजी ने सबसे पहले उनसे यही प्रश्न पूछा—"देवर्षि! श्रीकृष्ण के तुलादान के समय आपने वह तुलसीदल जिस तत्परता से अपनी जटाओं में छिपा लिया था और फिर जिस अतिशय आनन्द में आप डूब गये थे उसका रहस्य मैं आज तक न समझ पायी। भगवन्! कृपया आज आप यह रहस्योद्घाटन करें।"

देवर्षि मुस्कुराये, कुछ पलों के मौन के बाद गद्‌गद वाणी में बोले —"देवि, आपने उस दिन मुझ पर जो कृपा बरसायी उसके लिए मैं सदैव आपका ऋणी रहूँगा। उस दिन श्रीराधा ने स्वयं अपने कर-कमलों से तुलसी का एक दल रखा नहीं कि भगवान् वासुदेव भारहीन-से हो गये। राधाजी ने साक्षात् भक्ति अपने प्रियतम को भेंट की, इतना ही नहीं, साथ-साथ स्वयं अपने-आपको, अपने हृदय को उस पलड़े पर रख दिया था श्रीराधा ने। ऐसा तुलसीदल—जिसका त्रिलोक में कोई मूल्य नहीं आँका जा सकता — -वह मेरे हिस्से आया। देवि! उसमें तो श्रीकृष्ण और श्रीराधा दोनों समाये हुए हैं क्योंकि जहाँ श्रीराधा का हृदय हो वहाँ श्रीकृष्ण ही विराजमान रहते हैं। हे सत्यभामा! आपने मुझे केवल अपने स्वामी का दान दिया था, और उन वृषभानुनन्दिनी की कृपा से मुझे सदा-सदा के लिए श्रीराधाकृष्ण दोनों की प्राप्ति हो गयी।"

सत्यभामाजी नतमस्तक हो उठीं और नारदजी अपनी जटाओं में सहेजी अनमोल भेंट का स्पर्श कर फिर से उसी आनन्द-धाम में आकण्ठ डूब गये।
'पुरोधा', जनवरी २००० से —वन्दना

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

सरस्वती-वन्दना

या कुन्देन्दु तुषार हार धवला या शुभ वस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेत पद्मासना
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर् देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा।।

जो विद्या की देवी भगवती सरस्वती कुन्द के फूल, चन्द्रमा, हिमराशि और मोती के हार की तरह श्वेत वर्ण की हैं और जो श्वेत वस्त्र धारण करती हैं, जिनके हाथ में वीणा-दण्ड शोभायमान है, जिन्होंने श्वेत कमलों पर अपना आसन ग्रहण किया है तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर आदि देवताओं द्वारा जो सदा पूजित हैं, वही सम्पूर्ण जड़ता और अज्ञान को दूर कर देने वाली माँ सरस्वती, आप हमारी रक्षा करें।

—'सत्संग पथ' से साभार

Date of Publication: 1st March 2021
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2018-20
RNI No.18135/70

नवजन्म

(श्रीमाँ के द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ)

वानस्पतिक नामः Origanum majorana